श्रीकृष्णाय नमः

वर्ष ४

भक्ति

संख्या ७

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भगवान्दीन

एक प्रति ।)

चैत्र सम्वत् १९८०

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्ख़ी दादरी	
लेफ्टेनेन्ट सरदार रघुबीरसिंह जी सांवालिया राजा मांसी अमृतसर	११००)
पं जैनारायण जी भोड़ाकला, गुड़गावां	१११)
धर्म सोह मावजी जेठवा कालरांप्रोप्राइटर झरिया	११०)
ला० नूनकरणदास जी अगरवाल भिवानी	१०१)
आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मनिस्टर आफ एग्रीकलचर लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्ख़ीदादरी	,,
राव बहादुर, कमान राव बलवीर सिंह जी ओ, बी, ई, रामपुरा	,,
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
ला० जोहरी मलजी रेवाड़ी	५१)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
मुक्खी चरडूमल बलिराम जी भटिण्डा	५१)
सर आपा राव सातोले साहिब सी. एस. ई. के. बी. ई. रेवेन्यू मेम्बर गवालियर	५१)
प्रो० बाबूलाल जी भार्गव एम. ए. दिल्ली	४८)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
बाई लक्ष्मादेवी भगनी राव जगमालसिंहजी रईस नांगल	,,
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कमान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	,,
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया दिल्ली	,,
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा	,,
लाला दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	,,
राव बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	,,
श्री भक्तीदेवी धर्मपत्नी लाला नत्थकिशोर जी चर्ख़ीदादरी	,,
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी लाला प्रभुदयाल जी	,,
श्रीमती गणपतिदेवी धर्मपत्नी लाला गंगाप्रसाद जी सदरवाले, साहबगंज	,,
राव गजराजसिंह जी बी, ए, एल, एल, बी; गुडगावां	,,
सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मिजस्ट्रेट मिचनाबाद	,,
प्रेमसुख हीरालाल जनरल ठेकेदार रेवाड़ी	,,
ऐन, जे, राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट,	,,
राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली	,,
पी, एन, कौल बैरिस्टर दवान भूतपूर्व दि स्टेट लाहौर	,,
चौधरी जीवनदास जी आनरेरी मजिस्ट्रेट झंग	,,
लाला कृष्णलाल जी जींद	२५)

सहायक

टी. शाह जयपुर	१३)	सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी	५)
ादार उमरावसिं भाडावास	११)	जमादार दीपचनद जी	५)
सहाय चौधरी हेतराम जी दौलतपुर	११)	लाला ओंकारमल जी कानपुर	५)
ो हुकमासह जो निखरी	११)	चौधरी दौलतराम जी पटवारी नाहरी	५)
डत जग-नाथ जी रेवाड़ी	११)	लाला हरिश्चन्द्र जी प्रेमहाउस, दिल्ली	,,
ला अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी	११)	बाबू रामस्वरूप गनेश मॉल ,,	५)
धरी गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा	११)	पण्डित मथुराप्रसाद जी जमालपुर	,,
धरी मनें हरसिंह जी ,, पालहावास,	,,	लाला न्यादरमल जी दिल्ली	,,
ला मोतीलाल घासीराम जी दिल्ली	,,	लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,,	,,
ला सरदारीलाल जी कलाथ मार्केट दिल्ली	,,	लाला प्रभुदयाल जी फरुखनगर	,,
ौधरी इ द्रसिंह जी सिरडोल	१०	त्रिवेणीदेवी धर्मपत्नी लाला रामकरणदास खरक	,,
बू शिवरामसिंह जी गढ़ीबोलनी	७)	लाला श्रीराम जी गुप्ता भटिण्डा	,,
डि गुलाबोदेवी दिल्ली	५)	बाबू जयदयाल भार्गव भोड़ाकलां	,,
ाला बनारसीदास दिल्ली	५)	रा०सा० ला० सेवकराम एम, एल, सी- लाहौर	,,
सहायक शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी	५)	पे, नानकचन्द एस, एल. सी लाहौर	,,
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौधरी जोरावरसिंह		श्रीमान् घानी चन्द लाहौर	५)
जी एडीशनल जज अलीगढ़ ।	५)	श्रीमती सरस्वती देवी आश्रम रेवाड़ी	५)
श्रीमान् पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)	श्रीमती दुर्गादेवी भिवानी	५)
रा० ब० लेखनारायण सिंह जी बाढ़, पटना	५)	डाक्टर कुन्तलकुमारी दिल्ली	५)
रा०सा० बाबोंदहारीलालजी तहसीलदार चिडावा	५)	हवलदार ठाकरसिंह मूसपुर	५)
बा० बैजनाथसिंह अनेगयोंग, बर्मा	५)	सूरजमल सुरोलिया खेतड़ी	
ठाकुर भूरसिंह रामगंडला, जयपुर	,,	भूरसिंह माजरा, अलवर	,,
अड़िया बाबा, मन्दिर श्री दादी जी खेतड़ी	,,	मोहरूमसिंह बाघएकी	,,

———

श्रवण-भक्त राजा परिक्षित एवं कीर्त्तन-भक्त परमहंस शुकदेव मुनि।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ४ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, चैत्र पूर्णिमा सं० १९८७ | अङ्क ७

वेदोपदेश

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरुतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोअजायत ॥ १ ॥

ब्राह्मण इस पुरुष का मुख और क्षत्रिय बाहू रूप से पैदा हुये। उस वेधा की जो जंघा हैं वह वैश्य हुये चरणों से शूद्र पैदा हुये ॥ १ ॥

चन्द्रमा मनसोजातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्चप्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ २ ॥

चन्द्रमा मन से पैदा हुआ, नेत्रों से सूर्य पैदा हुआ, श्रोत्र से वायु तथा प्राण और मुख से अग्नि पैदा हुआ ॥ २ ॥

नाभ्याआसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णोद्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्याम्भूमिर्दिशश्रोत्रांस्तथालोकां अकल्पयन् ॥ ३ ॥

वेधा भगवान् की नाभी से अन्तरिक्ष हुआ, शिर से स्वर्ग पैदा हुवा, चरणों से भूमि श्रोत्र से दिशा उत्पन्न हुई इसी तरह भूरादि लोकों की कल्पना की ॥ ३ ॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिःसप्तसमिधः कृता ।
देवायद्यज्ञन्तन्वाना अबध्नन्पुरुषम्पशुम् ॥ ४ ॥

जिस समय देवताओं ने मानस यज्ञ का विस्तार करते हुए पुरुष को पशु रूप से भावित कर के बांधा उस समय पर सकल्पित उस यज्ञ की गायत्र्यादि सात छन्द परिधि हुई और २१ समिधा हुई ॥ ४ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेहनाकम्महिमानः सचन्तयत्र पूर्वे साद्ध्याः सन्ति देवाः ॥ ५ ॥

इस प्रकार प्रजापति के प्राण रूप देवताओं ने मानस यज्ञ द्वारा प्रजापति रूप यज्ञ की पूजा की उस पूजा से वह जगत् के धारण करने वाले मुख्य धर्म हुये जिस विराटप्राप्ति रूप स्वर्ग को ही वह उपासक महात्मा प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

शरणागत भक्त रघुनाथ

गतांक से आगे ।

रघुनाथ सुकोमल शैय्या पर शयन कररहा है। पतिव्रता अन्नपूर्णा धीरे धीरे आकर कोमल हाथों से पैर दबाने लगी ! परस्पर दोनों के हृदय में कितनी ही बातें एक दूसरे को कहने को उठी ! परन्तु कोई भी मुह से एक शब्द भी नहीं बोल सका। तब क्या ऐसा सुखदायक एकान्त स्थान पाकर भी उन दोनों में कोई बात नहीं हुई ? नहीं ! जरूर हुई, लेकिन मनुष्यों की प्राकृतिक भाषा में नहीं बल्कि प्रेम की मूक भाषा में। दोनों के पलकहीन नेत्रों से प्रेम अश्रुओं ने निकल कर दोनों के ही उत्तप्त हृदयों को शीतल कर दिया। इधर अश्रु रेखाओं के कोमल तारों द्वारा प्रेम विद्युत की शक्ति से एक दूसरे के भाव परस्पर एक दूसरे के हृदय में भरे जा रहे थे उधर पिशाच प्रकृति करण परिवार उन दम्पति का सदा के लिये वियोग करने का उपाय विचार रहे थे। सब ने रघुनाथ को विष प्रयोग द्वारा यमपुर पहुंचाने का निश्चय किया जिससे अन्नपूर्णा अपने को अनाथ समझ स्वेच्छा पूर्वक मन्त्री पुत्र को वरले।

जैसा विचार, वैसाही कर्तव्य, शाम के भोजन में विष मिला दिया गया चतुर अन्नपूर्णा को उनके कार्यों में सन्देह झलकने लगा उसने अपनी चतुराई से अपने घर वालों की कार्यवाही को जान लिया। अब वह किसी प्रकार इस जाल से पतिदेव को बचाने का उपाय सोचने लगी अन्नपूर्णा ने पतिदेव को ससुराल में पूरी बड़ी इच्छापूर्वक खाते देखा था। इसलिये उसने चालाकी से परोसी हुई थाली की ऊपर की पूरी में एक कागज पर भोजन में विषका हाल लिख कर छोड़ दिया और छिप कर क्या होता है देखने लगी।

षड्यन्त्र से अजानकार रघुनाथ हाथ पैर धोकर भोजन करने बैठ गया। इष्ट देव का ध्यानकर भोजन उनके अर्पण कर ज्योंही ग्रास तोड़ने लगा त्योंही उसकी दृष्टि उस कागजपर पड़ गई और सब हाल जान कर चिन्ता में पड़ गया। अन्नपूर्णा को माता ने भेद खुल जाने के डर से वहां से खिसका दिया। वह भी स्वामी की नजर कागज पर पड़ी देख निर्भयहो चली गई इधर रघुनाथ विचारने लगा, "हाय मैंने प्रभुको विष मिश्रित अन्न अर्पण करदिया। हे प्रभो! मेरे अज्ञानकृत अपराधको क्षमा करो। हे भक्तवत्सल! इस समय बुद्धी काम नहीं करती, आपका यह प्रसाद ग्रहण करूं या छोड़ूं। नहीं नाथ! मरना तो एक दिन है ही फिर मरण भयसे आपका प्रसाद त्याग देना कितनी मूर्खता है। यह विचार कर रघुनाथ भोजन करने लगा। भोजन शुरु करने में देरी हुई इससे उसके ससुराल वालों को कोई शक नहीं हुवा कारण वे जानते थे कि यह भक्त है इसलिये भोजन शुरु करने के पहिले सदाही इस प्रकार भगवान् का ध्यान किया करता होगा। रघुनाथ बिना अवशिष्ट छोड़े संपूर्ण प्रसाद खा गया। फल वही हुवा जो होना चाहिये था देखते देखते विष ज्वाला समस्त शरीर में फैल गयी और वह वहीं बेसुध हो गिर पड़ा। ऐसी स्थिति देखकर करुण परिवार को अपार आनन्द हुवा।

अन्नपूर्णा अपनी माता के कहने से चली तो गई लेकिन उसके हृदयमें शान्ति नहीं थी। अपने घर वालों को गुप चुप बातें करते देख उसका सन्देह और भी प्रबल हो उठा और वह अपने शयन गृह में अधीर की तरह घूमने लगी। सबके सो जानेके बाद बाहर आकर रसोई के किवाड़ों की दरार में से अन्दर टिमटिमाते हुये दीपक के सहारे अपने पतिको भोजन के आसन पर अचेतन अवस्था में सोते हुये देखकर अन्नपूर्णा का शरीर थर थर कांपने लगा। वह गिर पड़ी। फिर होश में आने पर पुनः रसोईमें देखने लगी तो दीपक के बुझ जाने से अंधकार हो जाने के कारण कुछ भी दिखाई नहीं दिया। दूसरा कोई सहारा न देख कर करुणा भरी आवाज से प्रभु को पुकारने लगी। माया मोहकी पुकार एक नियमित हद तक जा सकती है लेकिन सच्चे सरल हृदय की कातर ध्वनि विश्व व्योम को भेदन कर तुरंत भगवत् धाम में पहुंच कर हरी भगवान् का हृदय हिला देती है। भगवान् तुरंत कलावती पुर में आ पहुंचे। भगवान् के दिव्य नेत्रसे सारा रसोई घर जगमगा उठा। किवाड़ों के दरारों में से तेज फूट कर बाहर निकलने लगा। जिससे आश्चर्य चकित हो अन्नपूर्णा भीतर देखने लगी भगवान् स्नेहमयी जननीकी तरह रघुनाथ को गोदी में लिये उसपर अपना हस्त कमल फेरते हुये कह रहे हैं उठ रघुनाथ? उठ देख! मैं आगया हूं। अब भी तू इस प्रकार अचेतन क्यों पड़ा है? सत्य है:-

जोको राखे सांइया मार न सकि है कोय।
बाल न बांका करि सके, जो जग बैरी होय॥

प्रभु के संजीवन मंत्र से रघुनाथ मानो घोर निद्रा में से उठा हो इस प्रकार उठ बैठा और साथही वह तेज भी अदृश्य हो गया। अन्नपूर्णा भी अपने स्वामी को आलस्य छोड़ कर उठते देख अपने हृदय की शंका को निर्मूल कर शयन गृह में चली गई रघुनाथ पूर्व की घटनाओं को स्मरण कर मन में अनेक विचार करने लगा और अपने हृदयेश्वर की अपार कृपा देख आनन्द से पुलकायमान हो गया मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करने लगा:-

अहा प्रभो! आपके बिना इस दीन किंकर पर दूसरा कौन इतनी कृपा कर सकता है, ? नाथ! आप की लीला आप ही जानो। गोदी में से उठा कर फैंकने वाले फिर हृदय से लगा कर चुंबन करने वाले भी तुम्हीं हो। हे मायापति! मेरे जैसा अज्ञानी जीव आपकी लीला का रहस्य किस प्रकार समझ सकता है? मुझे इसके समझनेकी आवश्यकता भी क्या है? हे प्रभो! मुझे नये नये दुःख दो। विपत्ति के पहाड़ों के नीचे दबा दो। उन को सहन करते हुये आपके दर्शन तो होंगे जिससे परम लाभ और शान्ति मिलेगी इसलिये नाथ! बारम्बार दुःख दो। विपत्ति दो॥

इस प्रकार विचार करता हुवा रघुनाथ गद्गद कंठसे राम कृष्ण हरि आदि नाम कीर्तन करता हुवा बाह्य ज्ञान शून्य हो गया सारी रात बीत गई। पाप प्रकृति करण परिवार को तो रात्री भर राजभय से सुखसे नींद भी नहीं पड़ी, प्रातःकाल रघुनाथ के शवको ठिकाने लगाने के लिये गंगाधर ने आकर रसोई का द्वार जोर से खोला और रघुनाथ को अपने स्थान पर आसन बद्ध ध्यानावस्थित देख कर विस्मय सागर में डूब गया उसे पुनर्जीवित देख मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला धीरे धीरे भीतर जाने लगे। रघुनाथ ध्यानावस्था में उनके पैरों की आहट को अपने प्रभु की पदध्वनि समझ आवो मेरे स्वामी! आवो कहता हुवा दरवाजे की तरफ जाने लगा आंख खोलने पर अपने प्रभुकी जगह प्राण संहारकों को देख पुनः अपने स्थान पर आकर बैठ गया।

गंगाधर करण आदि उसका तेज और रात वाली अपूर्व घटना से विस्मय और डरके मारे उससे क्षमा याचना करने लगे। परन्तु रघुनाथ बोला, इसमें आपका लेश मात्र भी दोष नहीं है (कृतकर्म क्षयो नास्ति) मैंने कोई समय किसी को विष दिया होगा जिसके फलस्वरूप यह घटना हुई है। लेकिन मेरे प्राणपति जगदीश्वर की कृपा से मैं विष भक्षण कर के भी फिर जीवित होगया अब आप लोग मुझे मेरी पत्नी सहित विदा करदो।

वे लोग रघुनाथ के प्रभावसे पहिलेही भयभीत हो चुके थे अन्नपूर्णा के पास जाकर इस प्रकार पूछने लगे। अन्नपूर्णा तुझे अपने कंगाल पतिके साथ जाकर दुःखी होना है या यहां रह कर सुख भोगना है तेरी जैसी इच्छा हो शीघ्र प्रकट करदे जिससे वैसाही प्रबन्ध किया जाय।

अन्नपूर्णा उनके अघटित शब्द सुनकर स्तब्ध होगई और लज्जा पूर्वक परन्तु दृढ़ता से बोल उठी पिताजी मेरा अपराध क्षमा करिये। मैं अपने पति के साथही जाऊंगी। वह कंगाल हो या भिखारी मैं तो मन वाणी और कर्म से उन्हीं की हो चुकी मेरी एक मात्र गति वे ही हैं।

इस तरह कहते कहते सती की आंखो में से अग्नि बरसने लगी और वह सिंहनीकी तरह गर्जकर बोली, पिता? पिता? क्या आप मुझे व्यभिचारिणी बनाना चाहते हो मेरे पति से वंचित कर पर पुरुष के हाथ

में सौंपना चाहते हो असंभव यह कभी नहीं हो सकता अब मैं नादान नहीं हूं यदि मेरी इच्छा विरुद्ध कुछ भी करोगे तो मैं आत्मघात कर डालूंगी और सती के शाप से तुम कुल सहित नाशको प्राप्त हो जावोगे

गंगाधर अपने परिवार सहित भयभीत हो अन्नपूर्णा को रघुनाथ के हाथ सौंप कहने लगा लो अपनी पत्नी को ग्रहण करो हमारे पर इतनी दया करना कि किसी प्रकार हमारा कोई अनिष्ट नहो। रघुनाथ अन्नपूर्णा को साथ ले जय जगन्नाथजी कह कर नीलाचलकी तरफ चल पड़े।

अन्नपूर्णा की दुष्ट माता को इतने पर भी चैन नहीं था? अपने षड़यन्त्र में असफल होने का उसे बड़ा दुःख था। पुत्री वियोग से दुःखी सिर पर हाथ रख कर बैठे हुये अपने पति से कहने लगी अरे अबभी जाकर मन्त्रीपुत्र को खबर करदो तो वह अन्नपूर्णा को भिखारी के हाथ से रक्षा कर सकता है।

गंगाधर अपनी स्त्री की आज्ञाकी अवहेलना नहीं कर सका और मंत्री पुत्र के पास खबर भेजदी मंत्री पुत्र घुड़ सवार सेना साथले रघुनाथ के पीछे गया रघुनाथ घोड़ो की हिनहिनाहट सुनकर पीछे देखने लगा और अपने पीछे आती हुई सेना को देख स्तब्ध होगया। मंत्री पुत्र पास आकर उसे कहने लगा अरे नीच तू मेरे जीवन धन को कहां चुराये लिये जाता है? अरे यह सूर्यकान्त मणी क्या तेरे जैसे बंदर के गले मे शोभा पा सकती है? यदि जीने की आशा रखता है तो इसे मुझे सौंप कर भाग जा।

मंत्री पुत्र के वचन सुनकर रघुनाथ जरा भी नहीं डरा और श्री जगन्नाथ जी का ध्यान करता हुवा उसके सन्मुख मुसकुरा ने लगा। परन्तु अन्नपूर्णा अतिशय भयभीत हो थर थर कांपने लगी। स्त्री की ऐसी स्थिति देख कर रघुनाथ हंसता हुवा कहने लगा, प्रिये! तू क्यों घबराती है। जिन महान् विपत्तियों से सर्व शक्तिमान् भक्तवत्सल प्रभु श्री जगन्नाथ जी ने हम लोगों की रक्षा कर क्षण भर में हमारा मिलाप करा दिया उन विपत्तियों के सामने यह विपत्ति क्या चीज है? जब प्रभु स्वयं हमारी रक्षा कररहे हैं तब डर किस बात का? इसलिये तू उन्हीं का ध्यान कर।

रघुनाथ इस तरह अपनी स्त्री को प्रभुके नाम स्मरण के लिये उत्साहित कर रहा था उसी समय सामने से आयुधों से सुसज्जित दो अश्वारोही क्षत्रिय वीर उनके पास आ खड़े होगये उनने उससे सब घटना पूछी रघुनाथ कहने लगा मैं मेरी पत्नी को लेकर जा रहा हूं। यह मंत्री पुत्र मुझे मार कर इसे छीन कर ले जाने के लिये सैन्य लेकर यहां आया है। महाराज मैं अनाथ हूं। अब तक बराबर श्री जगन्नाथ जी मेरी रक्षा करते आये हैं और अब भी वेही करेंगे मुझे उनका पूर्ण भरोसा है।

दोनों क्षत्रियवीर रघुनाथ की कहानी सुनकर उसे आश्वासन देने लगे और उसे निर्भय कर आप स्वयं रक्षा के लिये आगे पीछे चलने लगे। इन सिंह सदृश दोनों वीरों के तेज और पराक्रम से भयभीत हो मंत्री पुत्र सेना सहित हरिण और गजों के झुंड की तरह भाग छुटा।

राज्यकी सीमा पार कर और कोई भय न देख दोनों वीर अब रघुनाथ से विदा लेने लगे रघुनाथ भी दोनों को प्रणाम कर उनकी कृपा का भार मानता हुवा आगे बढ़ा। ये दोनों वीर कौन थे सो रघुनाथ न तो जान ही सका और पूछने की इच्छा रहने पर भी न यह पूछ ही सका। यदि उसे मालुम हो जाता कि ये ही मेरे प्राणाधार इष्ट देव हैं तो उसे कितना आनन्द

होता किन्तु लीलामय तुम्हारी लीला का पार आजतक किसने पाया है ? लेकिन रघुनाथ को इतना तो दृढ़ निश्चय था कि इस विपत्तिमें से भगवान ने ही उनकी रक्षा करी है।

चलते चलते वे नीलाचल में आ पहुंचे। वहां पहुंच कर दोनों तृषित नयन से श्री नीलाचल चन्द्र के रूप सुधा का पानकर परम आनन्दित हुये। विदा होते समय अन्नपूर्णा को उसके पिताने जो धन रत्न दहेज में दिया था उससे मन्दिर के दक्षिणकी तरफ एक मकान खरीद कर सुखसे उसमें रहने लगे। इस समय भी निस्पृही रघुनाथ ने अपनी भिक्षावृति को नहीं छोड़ा प्रातःकाल से सायंकाल तक प्रभु के शय्यो त्थान- मंगल से लेकर शयन पर्यन्त की आरती भोग शृंगार वैगैरह का दर्शन करता। बीच में जिस समय दर्शन नहीं होते उस समय ग्राम में जाकर भिक्षा मांग लाता और उसे अन्नपूर्णा के सामने रख देता। वह उससे अच्छी पूकार से भोजन बनाकर अतिथि अभ्यागत का सत्कार कर अपने पति को भोजन करा बचा हुवा आप खा लेती।

रघुनाथ के भावमय नृत्य गीत और भगवद्भक्ति ने उसे सबका प्रीतिपात्र बना दिया वैष्णवों की सेवा सुश्रुषा से अन्नपूर्णा की कीर्ति भी चारों ओर फैल गई। इस पूकार रघुनाथ और अन्नपूर्णा दोनो जने हरि भजन में मग्न हो हरिक्षेत्र में रहते हुये अपने मानव जन्म को सार्थक करने लगे।

भगवद्भक्ति

गतांक से आगे।

कथा घाटम जी की

[ले० श्री० पूज्य भोले बाबा जी]

घाटम जाति के मीना राज्य जयपुर में गांव घोड़ी के रहने वाले गुरु भक्ति और गुरु वचन के निश्चय से उत्तम पद को प्राप्त हुये और कृतार्थ हुवे। ठगी का व्यापार करते थे, मन में कुछ विवेक, आया, तो एक हरि भक्त के पास गये। और भगवत् मंत्र मांगा उस ने शिक्षा की कि चोरी ठगी छोड़दे घाटम ने कहा कि मेरी जीविका यह ही है, कैसे छोड़ सक्ता हूं ? इस के सिवा जो आप कहें अभी कर सक्ता हूं हरिभक्त ने कहा कि अच्छा यह न सहो, तो सत्य बोलना, साधु सेवा, भगवत् के अर्पण किये बिना कोई वस्तु न खाना और सुनते ही भगवत् आरती में जा मिलना, ये चार बातें अंगीकार कर घाटम ने चारों बातें मान ली और हरिभक्त ने भगवन्मंत्र का उपदेश देकर इनको शिष्य करलिया। घाटम चारों बातों का अभ्यास करने लगे। एक दिन घर में कुछ न था, साधु आगये घाटम किसीके खलियान में से गेहूं चुरा लाये और साधुओं की सेवा करने लगे परन्तु मन में यह डर लगा रहा कि कहीं पता लगा कर गेहूं वाले आकर पकड़ न ले। ऐसा हुवा तो साधुओं की सेवा में विघ्न पड़ जायगा दैवयोग से आंधी सहित ऐसा

पानी बरसा कि पांवके खोज मिट गये और घाटम ने सुचित्त होकर साधु सेवा की।

एक दिन गुरु ने घाटम को भगवत् उत्सव पर बुलाया चिन्ता में पड़े कि पास तो कुछ है नहीं उत्सव में खाली हाथों जाना ठीक नहीं है राजा के यहां चोरी करने गये महल में घुसने लगे ड्योढी वालों ने पूछा कौन है उत्तर दिया चोर है वे लोग उत्तम पहिराव देख कर और निशंक उत्तर सुनकर समझे कि चोर नहीं है राजा का ही आदमी है इस लिये कुछ न बोले घाटम ने अश्वशाला में जा कर एक उत्तम मुश्की रंग का घोड़ा चुन कर उस पर सवार होकर चल दिया। जब द्वारपालोंने रोका तो उसी प्रकार सच २ कहकर चले आये और गुरुके स्थान को और चल दिये संध्याके समय एक नगर में ठाकुर द्वारे में आरती हो रही थी वहां गये और भजन करने लगे राजाके यहां घोड़े की ढूंढ पड़ी। कोतवाल सिपाहियों सहित घोड़े के पांव के खोजों से पता लगाता हुवा जहां घाटम भजन कर रहे थे उसी मंदिर के द्वार पर पहुंचा। भक्तवत्सल महाराज को चिन्ता हुई कि यह कोतवाल घोड़े को पहिचान कर मेरे भक्त को दुःख देगा इसलिये भगवत् ने घोड़ को नुकरा रंग का करदिया। इतने में घाटम आगया और घोड़े पर सवार हो कर चलने लगा तो कोतवाल सोच से भरा हुआ लज्जित होकर सब वृत्तान्त घाटमको सुनाकर कहने लगा कि घोड़ा वही है परन्तु रंग दूसरा है राजा हमको दंड देगा। घाटम बोला कि वह चोर ही हूं, यह घोड़ा भी वही है, भगवत् इच्छा से इस का रंग बदल गया है। तुम चिन्ता मत करो, मैं राजाके पास चलता हूं। यह कहकर राजाके पास आये। राजा सब वृत्तांत सुन कर चरणों पर पड़ा और बहुत से रुपये मोहरें देने लगा। घाटम ने कहा कि मात्र घोड़े से प्रयोजन है और कुछ नहीं चाहिये राजाने कुछ धन सहित घोड़ा घाटमजी के भेंट किया। घाटम जी ने वह सब लेजाकर गुरुजी के भेंट करदिया। सच है भगवद्भक्ति का ऐसा ही प्रताप है भगवान् ने स्वयं गीता में कहा है 'कि जो दुराचारी भी मेरा भजन करता है उस को निस्संदेह साधु जानना चाहिये क्योंकि अब वह शास्त्रों के तात्पर्य को जान गया है। अब उसके बुरे आचरण भी छुट जांयगे और वह मुझको प्राप्तहोगा। अर्जुन! सच जान मेरे भक्त का नाश कभी भी नहीं होता"।

मीना घाटम भक्त काम चोरी का करते।
गुरु वचनन विश्वास सत्य बोलत नहीं डरते॥
राजमहल में जाय अश्व इक चोरी किन्हा।
भगवत निज जन हेतु अश्व नुकरा करि दीन्हा॥
राजा सुनि वृत्तांत सब, अश्व दिया बहु द्रव्य भी।
भोला! करि विश्वास हरी, भक्त हेतु करते सभी।

कथा नरवाहन की

नरवाहनजी राधावल्लभी नौगांव के रहने वाले हित हरिवंश जी के चेले भगवद्भक्त साधु सेवी परम गुरुनिष्ठ थे। एक बार इन्हों ने एक साहूकार को नाव लूट ली और धन लेने के लिये उसे बंधन में डाल दिया। नरवाहन जी की लौंडी बड़ी दयावन्त थी उस वणिक को भोजन पहुंचाया करती थी एक दिन उसने साहूकार को यह उपाय बताया कि आधी रात के समय "राधावल्लभ हित हरिवंश" राधावल्लभ हित हरिवंश "इसे जोर से पुकार २ कर कहना कि तेरा शब्द नरवाहन जी कि कान तक पहुंच जाय जब वे आकर पूछें तो कहना कि हित हरिवंश का चेला हूं साहूकार ने ऐसा

ही किया नरवाहन जी राधावल्लभ और हित हरिवंश जी का नाम सुनकर बेसुधि हुये दौड़े और साहूकार को दंडवत् करके वृत्तांत पूछा, साहूकार ने कहा कि हित हरीवंश जी का चेला हूं और राधावल्लभजी का निजी भोग लिया चेरा हूं। नरवाहन जी ने बहुत ही लज्जित और ग्लानियुक्त होकर उस का सब धन फेर दिया, अपने अपराध की क्षमा कराया और चरणों में पड़ कर विनय करने लगे। कि तुम मेरे बड़े भाई हो। मुझ को अपना दास जान कर इतनी मेरी रक्षा करो कि यह वृत्तांत स्वामी जी के कानों तक न पहुंचे। नरवाहन जी की यह दशा देख कर साहूकार उसी घड़ी भगवत् शरण हुआ और हितहरिवंश जी के पास आकर उनका चेला होकर भगवद्भक्त हो गया। गोसाईं जी भी नरवाहन जी का निश्चय देख कर बहुत प्रसन्न हुये॥

मंसाराम- वाह महाराज! एक तो आप ने पाटम की कथा सुनाई कि चोरी किया करता था और दूसरी नरवाहनजी की सुनाई कि ठगथे। क्या भगवद्भक्त चोरी और ठगी को पाप नहीं समझते।

मस्तराम-भाई भगवद्भक्त चोरी ठगी को अवश्य पाप कर्म समझते हैं और ऐसे कर्मोंके निकट नहीं जाते। भगवद्भक्तों के बराबर कोई संयमी नहीं होता ये चरित्र उनके आरंभ कालके हैं, स्वभाव जल्दी नहीं बदलता, धीरे २ बदलता है जब धीरे २ भगवद्भक्त का अंतःकरण शुद्ध होता जाता है और भगवत् में आस्था बढ़ती जाता है। जब अंतःकरण विशेष शुद्ध हो जाता है तो ये कर्म भी आपसे आप छुट जाते हैं। भाव यह है कि पापी भी भक्त होकर धीरे २ धर्मात्मा हो जाता है। भगवान् ने यह ही बात गीता में कहा है। पाटम ने गुरु के बचन पर स्थिर रहकर प्राणों का भी लोभ न किया और नरवाहन जी ने गुरु का नाम सुन कर तीन लाख तीस हजार का धन दे दिया। इन दोनों के विश्वास को देखना चाहिये। सारांश यह है की भगवद्भक्ति में विश्वास होना सब सुकर्मों में शिरोमणी है।

नरवाहन हरि भक्तवर, गुरु सेवी निष्काम।
प्रचुर द्रव्य झट दे दिया, सुनि भगवत गुरु नाम॥
सुनि भगवत गुरु नाम, क्षमा मांगी हरि जन से।
कीन्हा प्रेम अपार, काय वाणी अरु मन से॥
श्री गुरु हुये प्रसन्न, धन्य कहते सब सज्जन।
भोला हो गुरु निष्ठ, सीख देते नरवाहन॥

कथा गजपति की

गजपति पुरुषोत्तमपुरी के राजा भगवद्भक्त थे। इन को गोसांई श्रीकृष्ण चैतन्य अपने गुरु में इतना दृढ प्रेम और विश्वास था कि जब गुरु के दर्शन कर लेते थे तब राज काज किया करते थे। एक दिन गुरु ने इनको दर्शन करने के लिये मने कर दिया। राजा संन्यासीका रूप धारण करके दर्शन के हेतु इधर उधर घूमने लगा परंतु दर्शन न हुआ। एक दिन रथ यात्रा के समय देखा गोसांई जी रथ के आगे नृत्य कर रहे हैं, राजा दौड़ कर चरणों में गिर पड़ा, गोसांई जी ने राजाका प्रेम और विश्वास देख कर उसे छाती से लगा लिया और प्रेम आनन्द में मगन कर दिया।

गजपति जगपति भक्त, चरण गुरु वर शिर धरते।
करते पहले दर्श, काज पीछे सब करते॥
मने किया गुरुदेव, दर्श कुछ दिन नहिं दीन्हा।
राजा दर्शन हेतु, वेष संन्यासी कीन्हा॥
नृत्य करत गुरुदेव जी, रथ के आगे देख कर।
चरणन में जा गिर पड़े, लीन्हे गुरु लगाय उर॥

कथा चतुरदास जी की

स्वामी चतुरदास परम भक्त और वैराग्यवान् थे। भगवद्भजन के आनन्द में मग्न रहकर सदा भगवत् के रंगमें रंगे रहते थे। मथुरा और ब्रजमंडल में विचरते हुये जहां तहां सत्संग के सुख को लूटते रहते थे। गुरु भक्तिमें ऐसे थे कि इनके समान दूसरा न होगा। जब इन के गुरु इन के घरपर आते तो भगवत् रूप जान कर सेवा पूजा किया करते थे। स्वामी जी की स्त्री नव यौवना और रूपवती थी। उस को इन्हों ने गुरु की सेवा में तत्पर कर दिया था कि जो आज्ञा दें सो करना। आप अपने धर्म में ऐसे दृढ थे कि कभी विश्वास में तनिक भेद न आया। सब सामग्री, धन और स्त्री गुरु की भेंट करके दंडवत् करके आज्ञा लेकर ब्रज मंडल में आये। प्रभात को आरती करके गोविन्दजी के दर्शन किया करते थे। शृंगार आरती केशवदेव जी को देखते और राज भोग नंदगांव देखकर गोवर्द्धन जी में राधाकुंड पर होते हुये वृन्दावन में आते। एक बार नंदगांव में मानसरोवर पर बिना अन्न जल रहे। नंदगांव के स्वामी नंद बाबा हैं। नंदगांव में आने वाले पथिकों का सत्कार करने का भार इन्हीं पर है। इसलिये नंदजी के कुमार सुकुमार भक्तवत्सल महाराज अपने मेहमान को बिना अन्न जल न देख सके, बारह वर्ष के लड़के का रूप धारण करके दूध का कटोरा स्वामी चतुर दास को दिया, चतुरदास ने उस रूपको फिर देखने के लिये जल मांगा। जब बहुत देर तक निडर चंचल लड़का पानी न लाया तब बहुत बेचैन और व्याकुल हुये भगवत् ने स्वप्न में आज्ञा की, कि जलका कुछ प्रयोजन नहीं है, तुमको सब ब्रज वासियों से दूध मिलता रहेगा। स्वामीजी ने विनती की, कि दूध ब्रजवासियों को बहुत प्यारा है। दूध के हेतु तो उन्हों ने आप को यशोदाजी की रस्सी में बंधवा दिया था, फिर वे दूध किस प्रकार देंगे। भगवत् ने कहा कि निश्चय कर अवश्य मिलेगा। पश्चात् स्वामी चतुरदास जी को सब ब्रजवासी दूध देने लगे और अबतक स्वामी जी के चेले चाहे जहां ब्रज में दूध लेते हैं। सत्य है, गुरु सेवासे कौन पदार्थ नहीं मिल सक्ता सब मिलता है।

चतुरदास गुरु निष्ठ, भक्त हरिपद अनुरागी।
केवल हरिपद नेह सर्व त्यागी बद भागी॥
धन जन गुरु पद अर्पि, घूमत ब्रज मंडल में।
नंद गांव गिरिराज, तथा वृन्दा जंगल में॥
दर्श दिये नंदलाल जी, दूध पिलाया आपके।
भोला क्यों भजता नहीं नंदलाल मन आपके॥

कथा राघवदासजी की

राघवदास जी भगवत् के परम भक्त थे। अपनी रचना में भोग दुबरिया रखते थे, इसलिये लोग इन को दुबला कहा करते थे परंतु भक्ति भाव में मोटे और महान् थे। शास्त्रोक्त भगवत् धर्म की साधना अच्छे प्रकार से करते थे और गुरु शिष्य के धर्म को तो इन्हों ने ऐसा निभाया कि किसी से न हो सके। अर्थात् वायु पुराण में लिखा है कि जो मंत्र है, वह गुरु है और जो गुरु है, वह ही भगवत् है। जब गुरु प्रसन्न होंगे, तो भगवत् आप से आप प्रसन्न और वशीभूत हो जांयगे। इसके अनुसार राघवदास जी ने अपने गुरु की ऐसी सेवा की कि गुरु और भगवत् दोनों को संतुष्ट किया और जिस को अपना शिष्य किया, उसको आवागमन से छुटा कर भगवत्

में मिला दिया और अंतर बाहर ऐसे विमल थे कि कलियुग की काई इनके समीप तक न आई। दिनरात सिवाय भगवत् चरित्र कीर्तन के दूसरा कार्य न था। कठोर वचन कभी मुखसे नहीं निकालते थे। नाभाजी ने इन के निमित्त हीराका दृष्टांत दिया है। अभिप्राय यह है कि जैसे हीरा अहरन पर रखकर चोट मारने से नहीं टूटता किंतु उस में घुस जाता है। जब दूसरा सजातीय हीरा उस के संमुख करते हैं, तो अहरन में से निकल आता है। इसी प्रकार राघवदासजी के हृदय को संसार के सर्दी, गर्मी, दुःख, सुख चलायमान नहीं कर सक्ते थे और सत्संग को देखकर वे इस प्रकार आमिलते थे कि जिस प्रकार सजातीय हीरा अपने सजातीय को देख कर आ मिलता है।

मोटे भगवद्भक्ति में, धरा दुबरिया नाम।
ज्ञानी राघव दास जी, निष्किंचन निष्काम॥
निष्किंचन निष्काम, एक हरि गुरु नहिं दूजे।
दोनों पूज्य मानें एक, सत्य ही दोनों पूजे॥
भोला! भगवत् सार अन्य सब ही हैं खोटे।
दुर्बल जगके भक्त, भक्त भगवत् के मोटे॥

हे मन

[ले० श्री० रमाशंर जी मिश्र "श्रीपति"]

करहु मन हंसा मानस बास॥
विषय वासना की सरिता मंह, अहहि न सुख की आस॥
भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, कर्म के घाट बने हैं चार।
मुक्ति सलिल शीतल अगाध अति, तामें अधिक सुपास।
क्रोध मरु मकर मान मत्सर के, माया मोह सिवार।
परत विषाद भंवर नहिं एकहु, होहु न मीत निरास।
आत्म बोध सरसिज बहु सुंदर, पावन सुपस पराग॥
मुक्ता राम नाम के अनुपम, पैहौ अमित हुलास॥

भक्ति ही सर्वोपरि है

[ले० श्री० स्वामी आत्मानन्द जी]

वेद में कर्म, उपासना, ज्ञान का वर्णन है, वेद तीनों गुणों को ही विषय करता है और भक्ति त्रिगुणातीत है, निर्द्वंद्व पद है। परन्तु अपने स्वरूप के जाने बिना नहीं होती इस में गोस्वामी तुलसीदास जी का वचन प्रमाण है।

जाने बिनु न होय परतीति, बिनु परतीति होय नहिं प्रीति
प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढाई, जिमि खग पति जलकी चिकनाई

स्वरूप के जानने के लिए और अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेश के परिहार्य तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधानादि महर्षि पतंजली ने योग दर्शन में वर्णन किया है और राम कृष्ण आदि की उपासना सत्संगति अपेक्षित है। क्योंकि इन्हीं से अन्तःकरण शुद्ध होता है तत्पश्चात् अपने इष्ट राम कृष्ण नृसिंह आदि जो प्रियतम हैं उनके रूप अनूप की छवि को साक्षात्कार कर अपनापना त्याग भगवत् के स्वरूप में एकमेक होजाना यही भक्ति है यही परम पद, यही ज्ञानियों, ध्यानियों भक्तों का

आदि स्थान यही भक्ति है। जो आचार्यों के सिद्धांतों पर दोषारोपण करते हैं उनकी बुद्धि का दोष है। जैसे धनवान् लोग जीवों के उपकारार्थ गौशाला, धर्मशाला, प्याऊ, कूंवा, बगीचा, सदावर्त आदि बनवाते हैं वैसे ही आचार्य अधिकारी प्रति अनेक साधन लिख गये हैं। अपनी योग्यतानुसार साधन में प्रवृत्त होना चाहिये उसी से सर्वोपरि भक्ति की प्राप्ति होगी।

दो मित्र एक सत्संगभवन में वार्तालाप कर रहे थे, पहिला मित्र-भाई भक्ति पत्र भी अब उत्तर उत्तर वृद्धि कर रहा है देखिये! माघ के अंक में श्री मधुमंगलजी मिश्र बी० ए० का लेख हृदय के आवरण को दूर कर यथार्थ वस्तु का लक्ष्य कराता है। भक्त शिरोमणि मथुराप्रसाद जी का लेख आज कल के वाचक ज्ञानियों से बचने के लिये और भगवद्भक्ति प्राप्त कराने के लिये एक अनुपम ही है। भक्त दामोदरदास के लेख को तो पढ़ते ही मित्र कंठ भर गया देह की सुध बुध भूल गया अहाहा! गृहस्थ हो तो ऐसा। भोला बाबा के लेखों का तो कहना ही क्या है? दूसरा मित्र:-मित्र गत मास के अंक में श्री भक्त शिरोमणि मथुराप्रसाद जी की शंका पढ़ी भी वह मेरे परिचित हैं श्री सरस माधुरी जी के भक्त मंडल में प्रधान हैं, बड़े योग्य हैं, लेखकों को किसी का अपमान करना सर्वथा विरुद्ध है। पहला मित्र-मित्र? यह बात नहीं है मैं लेखक से भली प्रकार परिचित हूं उनका यह भाव नहीं है वह तो सब से प्रेम भाव से रहते हैं और भगवद्भक्तों को प्राण से भी अधिक प्यार करते हैं मैं उनके उपदेश में रोज जाता हूं सब से भगवद्भक्ति का ही उपदेश करते हैं उन्होंने आज कलकी माया सहित शास्त्र संस्कार हीन नास्तिक पुरुष जो भगवान को मनुष्य कहते हैं उनकी आंखें खोलने के लिये मनुष्यत्व बुद्धि बाध करके ईश्वरत्व बुद्धि कराने को कहा है। उनके लेख का भाव यह है कि राम कृष्णादि में से मनुष्यत्व बुद्धि बाध कर ईश्वरत्व बुद्धि करो। "बुद्धिग्राह्य मतीन्द्रियम्" दूसरा मित्र: मित्र? भक्तशिरोमणी जी ने शंका क्यों की? पहला मित्र – भाई उन्होंने गम्भीर दृष्टि से नहीं देखा, इसी से शंका की है। दूसरा मित्र – मित्र? आप का कहना हम को जचता नहीं क्योंकि भक्त शिरोमणि जी बड़े योग्य पुरुष हैं इसमें किंचित् भी हम को संशय नहीं है। पहला मित्र:-मित्र मुझको भी लेखक का पूर्ण विश्वास है कि वह ज्ञान भक्ति भक्त, भगवत और गुरुमें किंचित भी भेद नहीं मानते यदि उनका लेख गम्भीर दृष्टि से देखा जाय तो जो श्री परम पूज्य भोले बाबा जी ने सारांश निकाला वही है इस से अन्यथा नहीं, मित्र मैं बहस करना नहीं चाहता यदि आप को विश्वास नहीं आता तो मेरे साथ चलिये आपका सन्देह दूर कराऊं। दोनों मित्र गृहस्थी पंडितजी के घर पहुंचे जिस पर दोनोंका पूर्ण विश्वास था विधिवत् दण्डवत् प्रणाम कर बैठ गये, आज्ञा पाकर दोनों ने अपनी२ बात कही। पंडित जी षटशास्त्री वेद वेदांग के पारंगत शुद्ध भगवत् भक्त थे, बोले भाई सुनो! 'ज्ञानहि भक्तिहि नहि कुछ भेदा' इत्यादि मैंने भक्त शिरोमणी जी के लेखमें पढ़ा है साधन चतुष्टय के बिना ब्रह्म ज्ञान का अधिकारी नहीं होता है और अहन्ता ममता की निवृत्ति होकर देह में आत्मा बुद्धि सर्वथा नहीं रहे उस समय तक कर्म उपासना करता रहे छोड़ बैठना और ऐसा कहना कि मैं ब्रह्म हूं असंग और पाप पुण्य से रहित हूं पतित होजाने का कारण है, प्रेम की पराकाष्ठा में

प्रेमी और प्रियतम का अभेद होजाय तो इसमें कोई बाधा नहीं, यह वचन निस्संदेह ठीक ही है। भगवान् का वाक्य है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥

मैंने उस लेख को भी पढ़ा है जिस पर भक्त शिरोमणि जी ने शंका की है, लेखक के भाव से राम कृष्णादि में मनुष्यत्व बुद्धि कदाचित् भी नहीं प्रतीत होती लेखक के लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि राम कृष्णादि के वे परम भक्त हैं उनकी भक्ति से ही परम प्रीति है उनके और भी लेख पढ़े हैं उनसे साफ प्रकट होता है कि भक्ति ही सर्वोपरि है परन्तु भक्ति शब्द परम विस्तार वाला है, पुत्र पिता में, स्त्री पति में यानी सांसारिक पदार्थों से लगा कर ईश्वर तक सबमें लग जाता है और अपने स्थल पर योग्य ही है। इस में कोई दुराग्रह करे वह ठीक नहीं है जैसा कि भक्त शिरोमणि जी ने 'प्रेमी और प्रियतम का अभेद हो जाना' कहा है, इसी बात को श्री स्वामी जगत् गुरु शंकराचार्य जी ने विवेक चूड़ामणी में कहा है।

स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते।

अपनी अपनी योग्यत अनुसार कार्य में प्रवृत्त मनुष्य का कर्तव्य है झगड़ेमें समय बिताना ठीक नहीं है। प्रत्येक आत्मा शब्द राम के दिव्य शरीर का ही बोधक है और पंचभौतिक शरीर का बाध करके पंच भौतिक मानने वाले कामान्ध पुरुषों को बोध के लिए साफ स्पष्ट दिखाता है कि राम कृष्ण नृसिंह आदि के शरीर दिव्य और अलौकिक हैं, उनके चरित्रों के पढ़ने से साफ प्रकट होता है कि उन के शरीर दिव्य हैं। परन्तु भाई यह विचार करो दिव्य शरीर दिव्य नेत्रों का विषय हो सकता है इन पंचभूत से उत्पन्न हुए नेत्रों से नहीं। अब विचार की दृष्टि से देखिये प्रत्येक आत्मा और दिव्य शरीर में क्या भेद रहा? यानी पर्याय ही शब्द हुये जैसे राहु का शिर।

ईश्वर अपनी इच्छा से भक्तों के हित के लिए अधर्म के नाश करने के लिए अवतार लेता है इसमें अनेक श्रुतियां स्मृतियां प्रमाण हैं।

माया बिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञ ईश्वरः॥
तमः प्रधान प्रकृतेस्तद्भोगापेक्षयाऽऽश्रया।
दिव्यतपवनतेजोम्बु भवो भूतानि जिज्ञरे॥

लेख अपने हृदय का उद्गार होता है किसी के अपमान के लिये नहीं! कदापि नहीं!! कदापि नहीं!!! यह साधुओं का काम नहीं किसी से राग द्वेष करें यदि करें तो वह साधु नहीं! मत मतांतरों से किंचित् भी विषमता नहीं यदि है तो वह सिद्धांती नहीं। यदि मुर्दा होकर चेष्टा करे तो प्रेत ही जानो।

भक्त शिरोमणि जी ने ठीक लिखा है 'मैं ब्रह्म हूं' कहना और देहाभिमान रहना यह दोनों सूर्यतम के समान विरुद्ध हैं यह ठीक है इस में भाई हम कह नहीं सकते यह स्वसंवेद्य विषय है परसंवेद्य नहीं लेखक को लेखक जाने, हां! हम अपने अनुभव से भक्त शिरोमणि जी से सहमत हैं कि 'मैं ब्रह्म हूं' यह वाणी का विषय नहीं है और जो व्यवहारिक और पारमार्थिक को मिलाते हैं जो कभी नहीं मिल सकती वह पक्के वाचक ज्ञानी हैं इस में सन्देह नहीं भाई भक्त शिरोमणि जी के लेख से मुझको बहुत उपदेश मिला है। 'को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा' उपदेशक गुरु होता है अतः गुरु मान बारम्बार नमस्कार करता हूं।

दोनों मित्र अपनी शंका का निवारण कर

मुख से अपने २ घर गये । ईश्वर अपनी माया करके शरीर रूपी यंत्र को शरीर पर आरूढ़ जो देहाभिमानी हैं उनके हृदय में बैठ कर घुमाता है इस लिये घूमने से बचने के लिये ईश्वर की शरण जाना ही यानी सर्वभाव जो लौकिक और अलौकिक हैं उनको ईश्वर अर्पण करना यही सर्वोपरि भक्ति है ।

महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश

गतांक से आगे

[ले० भक्तरत्न पं० मथुराप्रसाद जी]

प्रिय शिष्य ! प्रेम लक्षणा भक्ति के संबंध में तुम्हारी रुची के अनुसार कई महानुभावों की बानी तुम्हें सुनाना चाहता हूं । पहले कुछ कबीर साहिब की बानी सुनाता हूं ।

जब लग मरने से डरै तब लग प्रेमी नांहि ।
बड़ी दूर है प्रेम घर समझ लेहु मन माँहि ॥
लौ लागी कल ना पड़ै आप बिसरजें देह ।
अमृत पीवै आतमा गुरु से जुड़ै सनेह ॥
लागी लागी क्या करै लागी बुरी बलाय ।
लागी सोही जानिये वार पार होजाय ॥

इस के उदाहरण में एक दृष्टान्त है ।

एक महात्मा की एक शिष्य ने तनमनसे बड़ी भारी सेवाकरके उनको प्रसन्न कर लिया । महात्मा बोले प्यारे शिष्य ! हम बहुत प्रसन्न हैं तू क्या चाहता है अपनी इच्छा प्रकट कर । शिष्य हाथ जोड़कर बोला महाराज ! मुझे किसी संसारी वस्तु की चाह नहीं है न इस विनाशी शरीर में ही मुझे मोह है केवल परमात्मा के मिलने की उत्कंठा मेरे मन में है आप कृपा करें तो इच्छा पूरी हो जाय ।

महात्मा उसे अधिकारी जान कर अपने साथ एक नगर में लेगये और नगर के द्वार पर उसे छोड़कर यह आज्ञा दी कि शहर के अंदर चलाजा । जो कोई प्राणी तुझे अति प्यारा लगे उसी को भगवान् मान कर दर्शन करते रहना उसी की आज्ञा पालन करना सलभर पीछे हम तुझे संभाल लेंगे ।

चेले ने प्रणाम करके प्रार्थना की कि आप मुझे भूल न जाना । मैं आज्ञा पालन करूंगा गुरु जी अपने स्थान को लौट गये ।

शिष्य नगर में गया किसीपर उसका मन न ठैरा । बाजार में एक जौहरी की दुकान पर एक सुन्दर मनोहर लड़के को देखते ही उस का मन उस पर आसक्त होगया । उसी को परमात्मा मान कर साधु दुकान के सामने खड़ा होकर उसी की तरफ देखता रहा । जब जौहरी पुत्र दुकान से उठकर अपने

मकानपर गया तो उसके पीछे २ मकान तक पहुंचा। लड़का अन्दर गया वह बाहिर खड़ा होकर उसी के ध्यान में मस्त होगया। न कुछ खाया न पीया।

दूसरे दिन जब लड़का मकान से दुकान जाने लगा तो दर्शन करके आनंद में डूब कर उसके पीछे २ चल दिया। दुकान के सामने खड़ा होगया। लड़का दुकान पर जाबैठा। कई दिन एसा करते गुजरगये। अब बाजार के लोग चरचा करने लग। जब कोई उस से पूछता तो प्रेमी उत्तर देदेता कि मैं अपने भगवान् के दर्शन करता हूं। लड़के के पिता ने चरचा सुन कर उसे बहुत समझाया कि यहां खड़ा न हो परन्तु उसने न माना। जब लड़का घर चलाजाता और यह मकान के सामने खड़ा रहता, कोई रोटी का टुकड़ा देजाती तो खड़े २ खालेता था। जौहरी के पड़ोसियों ने जौहरी से कहा कि इस साधुके इस व्यवहार से तुम्हारी निन्दा होरही है। उसने कहा क्या करें यह किसी का समझाना बुझाना मानता ही नहीं। तब सब ने यह तदबीर बताई कि इस लड़के को साधु भगवान कहता है लड़के से कहलादो कि चलाजा और फिर न आना। पिता ने अपने पुत्र से कहा तो पुत्र ने इसे स्वीकार करलिया परन्तु प्रेम का प्रभाव उस के चित्त पर भी पूरा असर कर चुका था लड़का अपने पिता की आज्ञा पालन करना चाहता था इस पर भी साधु के सामने उस की जिह्वा से ऐसे शब्द नहीं निकलते।

ऐसी स्थिति देखकर सबने मिलकर यह युक्ति निकाली कि लड़के से यह बात साधुको कहलाई कि पांच सेर तोलमें अंडेकी बराबर मोटे मोती चाहियें लड़केने साधु को बुलाकर कहा कि हम को पांच सेर मोती अंडे की बराबर मोटे कहीं से लासकते हो तो लादो। प्रेमी साधु ने कहा भगवान् की आज्ञा जरूर पालन करूंगा, प्रणाम करके साधु चल दिया। लोगों ने पता बताया कि मोती समुद्र में पैदा होते हैं। वह समुद्र के किनारे जाकर एक मिट्टी के बरतन से भर भर कर जल बाहिर फैंकने लगा। मन में संकल्प करलिया कि समुद्र को खाली करके इस के अन्दर से मोती निकालूंगा। लोगों ने उसकी ऐसी चेष्टा देखकर पूछा क्या करता है तो उत्तर दिया कि समुद्र को खाली कर रहा हूं लोगोंने कहा अरे मूर्ख! कहीं समुद्र भी खाली हो सकता है तो उत्तर दिया कि मेरे एक इस जन्म में न होगा तो दूसरे तीसरे चाहे सौ जन्म गुजर जावें खाली करके छोड़ूंगा।

ऐसा कहकर दिन रात वही कार्य करता रहा। सात दिन और सात रात बीत गये उसी तरह पानी बरतन में भर भर कर फैंकता रहा। खाने पीने की कुछ सुध नहीं, ध्यान उसी भगवान् का रखते हुएइस कार्य में तत्पर रहा। शरीर इस का बिलकुल सूख गया परन्तु एक क्षण भी विश्राम न लेकर अपने कार्य में तत्पर था। आठवें रोज महामुनि अगस्त्य आ निकले जिन्हों ने तीन चुल्लूमें समुद्र को पान कर लिया था। उन्हों ने इस की दशा देखकर प्रश्न किया कि क्या कर रहा है? तो उनको भी वही उत्तर दिया जो औरों को दियाथा। मुनि महाराज को दया आगई और इसकी दृढ़ता देख प्रसन्न होगये। अगस्त मुनिराज ने समुद्र (साक्षात् देह धारी) को याद किया। वह तुरन्त हाजिर होगया समुद्र उनका प्रभाव जानता होथा। मुनिवर ने आज्ञा की कि इस साधु को अंडे की बराबर मोटे मोती चाहियें। समुद्र ने आज्ञा मान एक लहर में ढेर के ढेर मनों मोती बाहिर फेंक दिये। प्रेमीने पोट बांधली और अपना रास्ता लिया।

सत्यकहा है "हिम्मते मरदां मददे खुदा" प्रेमी साधुने वो मोती लाकर अपने भगवान के चरणों में अर्पण कर दिये। उन्हें देख कर सारे बाजार में हलचल मच गई। एक एक मोती लाखों किरोड़ों रुपया खर्च करने परभी न मिलै। सबने कहा कि यह कोई देव वा जिन है मनुष्य नहीं। अन्त में लड़के के पिता ने यह समझकर कि यह मेरे लड़के पर आसक्त है कहीं खड़ा कर न लेजाय उस को कतल करा दिया।

मांस उसका कसाइयों के हाथ बेच दिया। राजा की रसोई में भी कसाई के घरसे मांस जाता था दैववशात् मांस का वह टुकड़ा जिसे दिल कहते हैं राजा के रसोई खाने में पहुंच गया। रसोईया ने जब मांस को देगची में भर कर चूल्हे पर चढ़ाया तो आंच लगते ही वो दिलका टुकड़ा उछलकर छत से जा लगा फिर देगची में आपड़ा ऐसा कई बार होता देख राजा को खबर दी गई। राजा ने उस टुकड़े को निकलवा कर कमेटी कराई तो स्याने चतुर मनुष्यों की सम्मति यह हुई कि यह किसी आशिक का दिल है, इसे बाजार में लटकवा दिया जाय। राजाने ऐसा ही किया। जिस रस्सी में वह टुकड़ा लटकवाया गया उसके नीचे से जब वो जौहरी का लड़का निकलता था तो दिलका टुकड़ा थोड़ी दूर तक उसके साथ लटकता हुआ जाता और उसके वापिस आनेपर उलटा आजाता था। अब अवधि समाप्त होने पर आई और गुरुजी को सुध आई वह नगर में आये बाजार में उस रस्सी में लटके हुवे टुकड़े की तरफ दृष्टि डाली तो योगबल से उन्हें निश्चय होगया कि यह दिल उसही शिष्य का है। महात्मा बड़े भारी सिद्ध थे, क्रोधमें भर कर राजा के पास सीधे पहुंचे। राजा हाथ जोड़कर सामने आया और उनको क्रोधाविष्ट देखकर थर थर कांपने लगा। आप ने कहा तेरी राजधानी में बड़े २ अनर्थ होते हैं तू कुछ सावधानी नहीं रखता। अभी तेरे राज्य को नष्ट और तुझे भस्म करूंगा। राजा चरणों में गिरकर गिड़गिड़ाने लगा तो आज्ञा दी कि वह मांसका टुकड़ा अभी मंगा। मांस का टुकड़ा उसीसमय लाया गया, महात्मा ने कहा अभी पता लगा इसको किसने मारा तो कसाई बुलाये गये और उसको ताड़ना दी गई तब सारा भेद खुल गया, जौहरी और कतल करने वाले सब जमा होगये। तब महात्मा ने आज्ञा दी कि इसकी हड्डियां एक एक चुन कर लाओ वोभी आई महात्मा ने दिल को हड्डियों पर रख कर कमंडलु के जलसे परोक्षण किया। सबके देखते देखते शिष्य ज्यों का त्यों खड़ा होकर गुरु जी के चरणों पर गिर गया। गुरु ने उठाकर छाती से लगाकर कहा "बच्चा तू सच्चा प्रेमी निकला जा तू सिद्ध होगया" उनके आशीर्वादों से वोभी सिद्ध महात्मा बन गया।

इस दृष्टान्त से सिद्ध होता है कि इस दरजे का प्रेमी हो तब उस में और परमात्मा में कुछ भेद नहीं रहता, जब तक मरने से डरता है तब तक प्रेमी नहीं यह सत्य कहा है आगे कबीर साहिब प्रेम दशा वर्णन करते हैं।

पिय बिन जिय तरसत रहै पल पल विरह सताय।
रैन दिवस है कल नहीं सिसक सिसक दम जाय॥
निश दिन दाझै बिरहनी अन्त विरह की लाय।
दास कबीरा क्यों बुझै सतगुरु गये लगाय॥
देखत देखत दिनगया निश भी देखत जाय।
विरहिन पिया पावै नहीं बेकल जिया घबराय॥
विरह तेज तनमें तपै अंग सभी अकुलाय
घट सूना जी पीव में मौत देख फिर जाय।

कबीर सुंदरि यों कहैं मिलिबो कन्त सुजान ।
बेग मिलो तुम आपके ना तो तजिहौं प्रान ॥

(अपूर्ण)

करुण पुकार

[ले० श्री० प्रभुदत्त ब्रह्मचारी]

करुणा जयन ! सागर शयन ! अवदल दलन तुम हो प्रभो !
तारण तरण भवभय हरण जन मन हरण तुम हो विभो ।१।
आशा नदी गहरी प्रभो ! नहीं थाह इसकी पाय है ।
नैराश्य ग्राह कराल अति मुख फार कर डरपाय है ॥ २॥
क्षुद्र किश्ती भंवर में डुब डुबक गोते खात है ।
तृष्णा तरंगें उठत अति विकराल झंझावात है ॥३॥
पी मद्य विषयासक्ति की नाविक भया मतवार है ।
व्याकुल पड़ा मदमस्त कर से छुट गया पतवार है ॥४॥
हे नाथ ! हे जगदीश ! हे प्रभो ! हे कृपालो ! आइये ।
करि मुक्त ग्राह कराल से करुणेश ! धीर बंधाइये ॥५॥
किस को पुकारूं कौन जग में नाथ ! तुम सम आत्महर ।
है स्वार्थरत संसार सब माता पिता औ बन्धुवर ॥६॥

भक्ति, भक्त और भगवान्

[ले० श्री० हीरालाल जी अग्रवाल]

कभी २ यह शंका उत्पन्न होती है कि जो परमात्मा के भक्त हैं, साधु हैं, सज्जन हैं और महात्मा हैं उन्हें भी प्रायः सुख दुःख होता है और कभी कभी भलाई करने पर भी उन्हें फलस्वरूप बुराई ही मिलती है अर्थात् 'होम करते हाथ जलने' वाली कहावत चरितार्थ होती है और इसके विपरीत दुष्ट, दुराचारी और कुकर्मियों को कभी २ सुखी और आनन्दित पाते हैं इसका क्या कारण है ?

कुतर्कियों और बकवादियों के लिये तो कभी शंका का समाधान हो ही नहीं सकता किन्तु जो वास्तविक मुमुक्षु हैं उन्हें यदि समुचित शंका समाधान नहीं किया जाय तो सम्भव है वह अपने ठीक रास्ते को छोड़ इधर उधर भटकने लगें। उपरोक्त शंका का निपटारा संक्षेप में यही हो सकता है कि भक्तोंको जो सुख दुःख होता है वह उनके पूर्व जन्मके संचित कर्मों का फल है, जो वह हंसते २ सह लेते हैं, कुछ ऐसे भी महात्मा भक्त हैं जिन्हें विदेह जनक सदृश सुख दुःख का आभास ही नहीं होता । यद्यपि दूसरे लोग उन्हें दुःखित और सुखी समझ बैठते हैं। अब रही भलाई करते बुराई की बात ! यह कोई जरूरी नहीं है कि सज्जनों के सभी भलाई के कार्य का परिणाम बुराई ही होता है और दुष्टों को अपनी दुष्टता का परिणाम अच्छा ही होता हो । वास्तव में उनके भले बुरे कर्मों का पता ठीक २ तब ही लग सकता है जब उनके सम्पूर्ण कर्मों के अन्तिम परिणाम पर लक्ष्य रख उनका भली भांति मनन किया जाय। ऐसा करने से पता चलेगा कि सज्जनों के कर्मों का फल अच्छा और दुष्टों के दुष्ट कर्मोंका फल बुरा ही होता है। यह दूसरी बात है कि कुछ समय के लिये दुष्टों के दुष्कर्मों का फल लोगों की बाह्य दृष्टि में भला जचता है।

दूसरी बात यह है कि महात्माओं का हृदय मक्खन से भी कोमल होता है और इस लिये वह किसी को भी सताना या रोकना नहीं चाहते। सुख दुःख को समान समझ उनके मार्ग में रुकावट नहीं

डालते। महात्माओं में यह शक्ति अवश्य है कि यदि वह चाहें तो अपने सञ्चित कर्मों को भी समूल नष्ट कर दें लेकिन ऐसा करना भी वे नहीं चाहते क्योंकि ऐसा करना एक प्रकार से प्रकृति के नियमों में बाधा पहुँचाना है।

भक्ति के पाठकों को स्मरण होगा कि जो वेश्या, भक्त हरिदास को भ्रष्ट करने चली थी वह भक्तराज की भक्ति के प्रभाव से अपने कुकर्मों को छोड़ इतनी बड़ी भक्ता होगई थी कि उसने भी कितनों का उद्धार कर दिया और आप भी भक्त मनहरण में विलीन होगई। ऐसे ही महापुरुषों का नाम है भक्त, और इसी सच्चे प्रेमका नाम है भक्ति। जिसको परब्रह्म परमात्मा में सच्ची भक्ति है और अटूट प्रेम है वह संसार के सुख दुःख, हानि, लाभ, जीवन मरण और वासनाओं से मुक्त है। उसकी दृष्टि में राजा और रंकका दरजा बराबर है। वह तो अपनी धुन में मस्त है, उसे संसार का क्या ज्ञान? प्रेम या भक्ति लड़कों का खेलवाड़ नहीं है, यह तो अपने इष्ट देवके चरणों में समर्पण कर देना है। यह प्रेम सहज ही में नहीं होता अगर हुआ भी तो क्षणभंगुर है। सच्चे प्रेम के विषय में यह कितना अच्छा घटता है कि:-

प्रेम निबाहना कठिन है जैसे पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर॥

अगर सचमुच परमात्मा के दर्शन की चाह है तो उसके स्वरूप में ऐसे लीन हो जाओ कि तन मन की सुधि न रहे। अपने स्वांस को उसके नाम स्मरण में ऐसे अविरल भाव से लगा दो जैसे घड़ी बिना एक विपल विलम्ब किये 'टिक' 'टिक' करती रहती है। तुम्हारा प्रेम उस समुद्र के सदृश हो जावे जो पूर्णचन्द्र को देख उसे आलिंगन करने को ऊपर उठता है। उसके प्रेम में ऐसे विह्वल हो जाओ जैसे किसी घाव से पीड़ित मनुष्य पाव पकने की पीड़ा से केवल 'आह' 'आह' करता है। तुम उसकी भक्ति में ऐसे मस्त होजाओ जैसे जोंक खून चूसने में। तुम्हारा ध्यान उसमें ऐसा लगजाय जैसे चकोर का चन्द्र में। तुम्हारे श्वांस एक क्षण के लिये भी इसी प्रकार उसके नाम स्मरण से न रुकें जैसे पाप हारिणी, तरण तारिणी भगवती भागीरथी की अविश्रमिता धारा। बस, बस होगया। जहां 'मैं' और 'तू' के बीच का परदा हटा कि चुम्बक का चक्का आप ही आप मिल गया। फिर न जप जाप की आवश्यकता है और न पूजा पाठ की। बस वहां तो 'मैं' ही 'मैं' है 'तू' का नाम नहीं।

जिस समय ऐसी लग्न लग जायेगी भगवान् स्वयं साकार रूप से प्रकट होजायेंगे। भगवान् तो भक्त के वश में हैं यदि उनका साक्षात्कार नहीं होता है तो इस विलम्ब का कारण हमारी भक्ति में न्यूनता है। जब भगवान् पापी अजामील की एक पुकार में दौड़े आये, जब भक्त वत्सल के नाम मात्र से सुग्गा पढ़ाने के मिस से वेश्यावृत्ति करने वाली गणिका तरगई और जो श्रीकृष्ण गज की पुकार सुन गरुड़ का वाहन छोड़ पैदल ही चले आये भला वह दयासागर, करुणा निधान अपने आश्रित भक्तों की सुधि लिये बिना कैसे रह सकते हैं।

अगर परमात्मा शीघ्र नहीं मिलते तो इसका एक मात्र कारण यही है कि हमारे और उनके बीच के अज्ञान रूपी परदे का समूल नष्ट नहीं हुआ है। यदि माली अपने राजा की फुलवाड़ी के फूलों की माला प्रेम से गूंथ उन्हें अर्पण करता है तो राजा उस माली पर प्रसन्न हो उसे इनाम ही देता है उसी

पुकार भक्तों की टूटी फूटी प्रार्थना और प्रेम पर रीझ वह भक्तों के लिये क्षुद्र से क्षुद्र कर्म करने को भी तैयार होजाता है। लेकिन प्रार्थना हो शुद्ध और पवित्र हृदय से और पुष्प-हार हो सच्चे प्रेम का, फिर उस राजा से मिलने में पल भर का भी विलम्ब नहीं हो सकता।

परमात्मा के प्रेम में ऐसा मस्त हो जाय कि चलते, फिरते, उठते, बैठते, खाते, पीते, सोते, जागते सिवाय उस चित्तचोर के और कुछ दिखाई ही न पड़े। दुनियां उसको पागल कहा करे वह अपने रंग में रंगा हुआ दुनियां ही को पागल समझे। लोगों की दृष्टि में वह 'मस्त मोला' दीख भले ही न पड़े लेकिन उसे इन बातों से क्या मतलब उसने तो पारखी जौहरी के हाथ अपनेको बेच डाला है। जिस को एक बार भी उस 'चांद से मुखड़े' का दर्शन हो गया वह संसार के सुख विलास और नवयुवतियों के मुनि मन हरण सुन्दर रूप को तुच्छ समझता है। उस की नजरों में उस 'प्यारे' के समान, नहीं नहीं उस के पासंग के बराबर भी त्रिलोकी में नहीं दिखाई पड़ता।

पाठक प्रेम हो तो ऐसा हो और भक्ति इसी का नाम है।

राम नाम सब कोई कहे, दशरथ ठाकुर और चोर।
बिना प्रेम रीझे नहीं, तुलसी नन्द किशोर॥

इति शुभम्!

नेत्र

[ले० श्री मदनगोपाल जी "सिंहल"]

प्रियतम! मैं तुमसे प्रेम करता हूं। मेरे हृदय! मैं तुझे देखना चाहता हूं। बिना तुम्हारे देखे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। सोते बैठते खाते पीते मुझे तुम्हारा ही ध्यान रहता है। इसीलिये मनुष्यों की दृष्टि में मैं पागल होगया हूं। क्या यह मेरा अपराध है कि मैं तुमसे प्रेम करता हूं? क्या इसी अपराध के कारण मैं दर्शन सुखसे वञ्चित हूं? बोलो बोलो।

सांवरे क्यों मोसो रिसमानी
तेरे काज घर बार त्याग के गलियन फिरत दिवानी।
लोक लाज कुल रीति प्रीति जग इनहूं को दियो पानी॥
नारायण अब तो हंस चितवो एरे रूप गुमानी।

मेरे सर्वस्व! मैं तो तुझे बिना देखे मान भी जाऊँ, अपने हृदय को भी मनालूं किन्तु यह दुखिया आखें नहीं मानती। मुझसे सदा तेरे दर्शन करा देने के लिये कहती रहती है। मोर बन कर तेरी घनश्याम छवि को देखने के लिये ललचाती रहती हैं। भृङ्ग बन कर तेरे कुञ्ज वदन को ढूंढ़ती फिरती हैं और मुझे भी नहीं छोड़ती। मुझे भी सदा साथ साथ लिये फिरती हैं। चलने को मना करता हूं तो रोने लगती हैं। इन्हें किस प्रकार समझाऊँ प्राण नाथ!

प्रार्थना स्वीकार कर न जाने तुम कब आजाओ यही समझ कर यह आंखें अपने में किसी को भी नहीं बसने देती। अन्य, साकार वस्तुओं का तो कहना ही क्या, निराकार नींद को भी नहीं आने देती। यहां तक कि अपने घर की सम्पत्ति, आंसुओं, को भी निकाल निकाल कर बाहर फेंके दे

रही हैं, जिससे जब तुम आओ स्थान खाली मिले। तुम्हें ठहरने में कष्ट न हो।

प्रीतम! जब यह आखें अपना सर्वस्व लुटा कर तुम्हें बुलायेंगी क्या तुम तब भी नहीं आओगे? क्या तुम इतने निष्ठुर हो प्यारे?

आदर्श जीवन

[ले० श्रीमती बहन जयदेवी जी]

आदर्श जीवन ही मनुष्य जन्म की सार्थकता है, जिसने अपने जीवन को आदर्श नहीं बनाया उसका पृथ्वी पर जन्म लेना निष्फल है, मनुष्य जन्म बड़े पुण्यों से प्राप्त होता है, यही मोक्ष तक पहुंचाने की नसैनी है, इसकी सार्थकता को नहीं समझना और उलटा विषयों की प्राप्ति में ही लगे रहना यह कितनी बड़ी मूर्खता है, आदर्श जीवन एक ऐसा जीवन है, कि जिसके प्राप्त करने पर मनुष्य निर्द्वन्द्व निशंक तथा निर्भय होकर संसार में विचरता है, आदर्श जीवन वाले मनुष्य का कोई शत्रु मित्र नहीं होता, सब में उस की समभावापन्न बुद्धि होती है, सब के सुख दुःखों को अपने ही करके जानता है, क्योंकि नम्रता दयालुता आदि आदर्श जीवन वाले के मनको अपना घर बना लेती हैं, जो अपनी आयुका प्रथम भाग आदर्श जीवन बनाने में लगाता है वही संसार में मनुष्य कहाने योग्य है, अन्यथा विषयी जन पशु समान हैं। क्योंकि खाना, पीना, सोना और सन्तान पैदा करना इत्यादि पशु और मनुष्यों में समान ही हैं। जो माता पिता सन्तान पैदा कर के उसका जीवन आदर्श बना देते हैं वही माता पिता धन्य हैं और उन्हीं का जन्म सफल है, अपना जीवन आदर्श बनाकर दूसरों को आदर्शता सिखलाते हैं यहबुद्धि पशुओंमें नहीं है, इसी कारण मनुष्य की पशुसे विशेषता है। क्योंकि जैसा वृक्ष होता है, वैसे ही फल लगते हैं। नीम स्वयं कड़वा है, तो निबोलियां भी कड़वी ही होती हैं। नीमके पास यदि किसी और प्रकार के पौदे लगादें तो वह भी कड़वे होजाते हैं। इसी प्रकार जैसे माता पिताके आचार विचार सन्तान देखती है, उसी के अनुसार उसकी बुद्धि बनती है, लोक में यह प्रत्यक्ष देखने में आता है, कि उपदेश द्वारा इतना फल नहीं होता, जितना कि मनुष्यके सदाचारी जीवन से होता है। वर्तमान समय में माता पिता यह तो चाहते हैं कि सन्तान आज्ञाकारी, गुणवती, और सुशील हो, किन्तु अपनी तरफ किञ्चित् भी ध्यान नहीं देते, कि हम किस प्रवाह में पड़े जारहे हैं। यदि दम्पति भोगासक्त हैं तो कब सम्भव है कि सन्तान ज्ञानासक्त हो। सुवर्ण तभी उत्तम २ अलंकार बना सकता है, जबकि पहिले आप अग्नि में तपता है। अपने को बिना तपाये क्या सुवर्ण उत्तम२ अलंकार बना सकता है? इसी प्रकार मनुष्य जब तक अपने को तप रूपी अग्नि में नियम बद्ध होकर न तपायेंगे, तब तक क्या सन्तान आदिको शिष्टाचारी, सदाचारी बना सकते हैं। जिसने अपना जीवन आदर्श नहीं बनाया वह चाहे जितना विद्वान् नीतिज्ञ, तथा धनवान् और कुलीन हो, उसकी मान प्रतिष्ठा इसलोक तथा परलोक में कहीं नहीं होसकती।

एक मनुष्य जोकि अति आदर्श जीवन प्राप्त किये हुये है, क्या वह अपने आप ही इस धारणा वाला बन गया ? नहीं २ उसके माता, पिता अति उच्च जीवन-मय थे। जैसेकि मन्दालसा। मन्दालसा जब ही अपने पुत्रों को ब्रह्मज्ञानी बना सकी जबकि पहिले से आप ब्रह्मज्ञानी थी। बिना अपना सुधार किये अर्थात् अपना जीवन आदर्श निष्कलंक बनाये बिना क्या कोई परोपकार कर सकता है ? बिना अपने अनुकरण के अन्य के अन्त स्थल में प्रभाव नहीं पड़ सकता, यदि परोपकार करना अभीष्ट है तो पहिले अपने को आदर्श की कसोटी पर आरूढ़ करना चाहिए, जैसे कि आम्रका वृक्ष मनुष्यों को कितना सुख आनन्द देता है, ग्रीष्म ऋतु की भीषण तापसे संतप्त मनुष्य उसकी शीतल छाया में विश्राम लेता है और, आम्रफल खाकर आनन्दित होता है, परन्तु यह गुण उसमें किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? आम्र गुठली जो वृक्ष की मूल भूत है, उसने अपने को मिट्टी में मिला दिया, तबही यह परोपकार में परिणत होकर दूसरों को लाभ पहुंचाती है। यही क्रम मनुष्य का होना चाहिये। अपने कोबिना कष्ट दिये कोई दूसरों को सुखी नहीं बनासकता। अनेकों ऋषियों तथा योगियों के उपदेश ग्रन्थों को लोग क्यों प्रमाण मानते हैं ? कारण यही है कि उन्होंने सांसारिक भोग विलासों को काक विष्टावत त्याग कर, आत्मसंयम रूप अग्नि में अपने को होम दिया था, और उसका जो फल मिला वह साधारण प्राणियों के लिये वितरण करदिया यह प्राकृतिक नियम है कि जिस मनुष्य ने तपकरके अपने अन्तः करण को शुद्ध सात्विक नहीं बनाया, वह चाहे जितना उपदेश करे, योग क्रिया में अति कुशल हो वेदविषय में पारंगत हो, चाहे पृथ्वी आकाश के कुलाबे मिलाताहो, परन्तु मनुष्य मात्र के हृदय में उसके उपदेश ऐसे ही निरर्थक जाते हैं, जैसे मरु भूमि में वर्षा का जल। वही प्राणी परोपकार तथा विश्व की सेवा कर सकता है जिसने अपना जीवन यम नियम पूर्वक शास्त्राज्ञानुसार पालन किया है और शास्त्र मर्यादा का कभी भंग नहीं करता। पूर्व के राजा, महाराजा महात्मा, तथा स्त्रियां अपना एक २ पग धर्म के साथ उठाया करते थे। अपनो जीवन निष्कलंक बनाना ही उनका दूसरोंके प्रति उपदेश करना था। वह वाणीकी कुशलता नहीं दिखलाया करते थे। जैसा कि वर्तमान समय में कि "परउपदेश कुशल बहुतेरे"। दूसरों को उपदेश देने वाले तो बहुत हैं परन्तु अपने में आचरण करने वाले विरले ही होते हैं दशरथ जनकादि जैसे महापुरुषोंने दूसरों को किसी प्रकार का वाणीमात्र उपदेश नहीं किया उनका आदर्श जीवन ही दूसरों को आदर्श बनाने का कारण या आभास था। उनके सदाचार का जो प्राणी अनुकरण करता है, वही सर्व दुःख शोक से पार होजाता है। महाराजा दशरथ की आज्ञाको रामचन्द्र जी ने किस श्रद्धा और शान्ति के साथ सुन कर प्रसन्न मुख वन का रास्ता पकड़ा। भीष्म ने किस प्रकार अविवाहित रहने की कठिन प्रतिज्ञा करके अपने पिता को संतुष्ट किया। इसके विरुद्ध आज कलके नये ढंग के उपन्यासों में पिता, लेखकों की हंसी दिल्लगी का एक खासा लक्ष्य होता है। उसे धक्का देना, बेवकूफ बनाना, अपमानित करना लेखकों का एक कौशल्य समझा जाता है। कहीं २ तो पिता को भद्दे और गंवारपन की मूर्ति बनाया जाता है और उस का अपमान नवशिक्षित और समाज संशोधक पुत्र करी

बहादुरी के साथ करते दिखाये जाते हैं। हमारे पूर्वजों की यह चाल नहीं थी। उस समय पितृ शासन का आदर्श ऊंचा था। जहां आज कल माता पिता की अवज्ञा करते हैं वहां उस समय के बाल सुनते और मानते थे। क्या पूर्व क्या पश्चिम सर्वत्र यही व्यवस्था थी। अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है ही परन्तु उसे वीर व्रती होना चाहिए। उसे अन्याय का विरोध और अत्याचार का अवरोध करना चाहिए। उसे दूसरों का ध्यान पहिले और अपना पीछे रखना चाहिए। उसे अत्योत्सर्ग का भाव धारण करना चाहिए।

दो राजपूतों में बहुत दिनों का बैर चला आता था। एक दिन इन में से एक क्रोध के आवेश में दूसरे का प्राण लेने की इच्छा से नगर में निकला। जबकि वह थोड़ी दूर गया था, उसने देखा कि मनुष्य सड़क छोड़ कर इधर उधर भागे जा रहे हैं और सड़क मनुष्यों से खाली होगई है, इतने ही में क्या देखा कि सामने से एक मतवाला हाथी आरहा है। राजपूत एक कोने में छिप रहा। हाथी क्रोध से सूंड फटकारता चला आता था और संयोग वश उन भागने वाले मनुष्यों में से किसीका एक बालक सड़क पर छूट गयाथा, हाथी उसके बिल्कुल पास पहुंच गया और उसे चीर कर फैंकना ही चाहता था कि इतने ही में कोई मनुष्य एक तरफ से दौड़ा आया और उस लड़के को गोद में लेकर एककिनारे निकल गया। जब हाथी वहां से दूर चला गया, तब सब आदमी उसे धन्यवाद देने लगे। इतने में दूसरा राजपूत जो कोनेमें छिपा खड़ा था, उसके पास आया और मालूम हुवा कि यह तो वही राजपूत है कि जिसके प्राण लेने को मैं आज घरसे निकला था, उसकी वीरता, साहस और परोपकार को देख कर उसकी आंखों में आंसू आ गये और उसके गलेमें लिपट कर कहने लगा 'भाई! मैं तो आज तुम्हारा प्राण लेनेके लिये घर से निकला था, पर तुम्हें इस वीरता के साथ जीवन दान देते देख कर मेरी आंखें खुल गईं, तुम्हारे जैसे धर्मवीर के प्रति दुर्भाव रखना अधर्म है' दूसरों की रक्षा के लिए अपनी रक्षा का ध्यान न करने का जो महत्वपूर्ण दृष्टान्त है यही आदर्श जीवन है। असहाय सीता जी को जब दुष्ट रावण रथ पर चढ़ा कर लिये जा रहा था, तब जटायू से न देखा गया। जब तक उसके शरीर में प्राण रहा, तब तक वह अन्याय का दमन करने के लिये श्री सीता जी को छुड़ाने के लिये लड़ता रहा। इसी प्रकार महाराजा जयपुराधीश एक वार अपने साथियों सहित आखेट को गये परन्तु बहुत दूर तक भी कोई शिकार न मिला। अन्त में एक जंगली शूकर दृष्टि पड़ा और राजा ने उसका पीछा किया, पीछा करते २ बहुत दूर चले गये और रात्रि होगई, राजा को प्यास लगी हुई थी, मरुभूमि थी, पानी कहीं देखने को भी न मिला, इतने में एक झोंपड़ी दिखाई दी राजा उसी की तरफ चल दिया, झोंपड़ी में एक वृद्धा बैठी हुई थी राजा ने उस से कहा हे अम्ब! कहीं पानी हो तो पिलाओ! वृद्धाने बड़ी शीघ्रता से मिट्टी के बर्तन में शीतल जल लाकर राजा को पिला दिया। राजा पानी पीकर अति प्रसन्न हो वृद्धा को धन्यवाद देने लगा और समीप में बैठकर उसके निर्वाह की वार्ता करने लगा।

वृद्धा - हे सिपाही जी मेरा तो अब कोई सहायक नहीं है, एक पुत्र था वह भी न जाने कहां चला गया। सुनती हूं कि जयपुराधीश महाराजा रामसिंह के दरबार में नौकर है और मैं तो यहांजो कोई प्यासा

आता है उसको पानी पिला देती हूं वे कुछ देना चाहते हैं, परन्तु मैं लेती नहीं, क्योंकि सुन रक्खा है कि प्यासे को पानी पिला कर और भूखे को भोजन खिला कर, उनसे कुछ लेना भारी पाप है, बस ऐसेही जंगल की लकड़ी मृग छाला बेच कर अपनी उदर पूर्ति करती हूं परन्तु बुढ़ापे के कारण यह कार्य भी बड़ी कठिनाई से करती हूं।

राजा:-अच्छा हम तुम्हें जयपुराधीश महाराज से मिला देंगे।

वृद्धा:-राम ! राम !! भला राजा मेरे से क्यों मिलेंगे। मैं उनके नज़राने के लिये सोने का टका कहां से लाऊंगी। वृद्धा क्या जानती थी कि यह वही महाराज है, बस राजा कुछ उत्तर न दे वहां उसी चटाई पर लेट गये और वृद्धा के पुत्र को खोज करा उसे बुला कर बहुत धमकाया। फिर वृद्धाको पालकी भेज राज्य में बुला कर ५०) मासिक देना नियत कर दिया। राजा ने उस दरिद्रा वृद्धा के साथ जो ऐसा व्यवहार किया, तो क्या राजा की मान प्रतिष्ठा घट गई ? नहीं उनकी कीर्ति तो लोक लोकान्तर में फैल गई, यही श्रेष्टाचार है, जोकि सब प्राणी मात्र को अपनी अपनी योग्यतानुसार करना चाहिये। बहुतेरे मनुष्यों का ऐसा अनुमान है कि अदब कायदे से चलने का नाम ही शिष्टाचार या सुजनता है, कितने ही मनुष्य कर्ण सुखद मधुर वाक्यों से और बनावटी व्यवहारों से लोगों का सत्कार करके सुजनता प्रकाश करना चाहते हैं, किन्तु इसको वास्तविक सुजनता नहीं कह सकते। मनुष्योंमें जो आगत स्वागत करने का व्यवहार प्रचलित है, उसी को शिष्टाचार मान लेना ठीक नहीं है। यद्यपि अदब, लिहाज, खातिर, नम्रता, श्रद्धा, भक्ति और मधुर भाषणादि शिष्टाचार के अन्तर्गत हैं, तथापि इन में किसी एक को शिष्टाचार समझ लेना भूल है। शिष्टाचार या सौजन्यता में अनेक महत्व भरे हैं शिष्टाचार का अर्थ है, साधु का आचरण, जो साधु जैसा व्यवहार करेगा, वही शिष्टाचार कहला सकेगा। उसी का जीवन आदर्श है भले बुरे कामों का साक्षी तुम्हारा अपना अन्तःकरण ही है। अन्तःकरण हमेशा अच्छे काम करने के लिये प्रेरणा करता है, किन्तु कुबुद्धि उसे रोके रखती है। अतएव जब तक कुबुद्धि को दूर न किया जाय, तब तक एक भी अच्छा काम करने को कोई चेष्ट नहीं कर सकता। मनुष्य स्वार्थ त्याग कर ज्यों २ सुजनता का अभ्यास करेगा, त्यों २ कुबुद्धि आप से आप दूर होती जायगी और सुबुद्धि को क्रम क्रम वृद्धि होगी। सुबुद्धि की वृद्धि होने पर मनुष्य सच्चरित्र हो कर अपनी सुजनता से लोगों का बहुत कुछ उपकार कर सकता है। बहुत से मनुष्यों का कहना है कि वह सुजनता किस काम की जिस का उद्देश्य अच्छा नहीं। ऐसे ही दया का यदि कुछ काम न किया तो केवल दया की चिन्ता करने से क्या फल ? जिनके अन्तःकरण में विनय का भाव नहीं है उनकी सुजनता अस्वाभाविक हो पड़ती है। वे अधिक समय तक शिष्टाचार के नियम की रक्षा नहीं कर सकते। उनके कण्ठ, स्वर, असहिष्णुता, उदासीनता और क्रोध भाव से उनकी बनावटी सुजनता का पता शीघ्र लग जाता है। विद्वानों ने क्या स्त्री क्या पुरुष दोनों के ही लिये विनय को ही प्रधान भूषण माना है। अर्थात् "शीलं परं भूषणम्" सोने चांदी के भूषण जैसे बाहरी शोभा को बढ़ाते हैं वैसेही विनय रूपी भूषण मन को अलंकृत कर उसकी शोभा को बढ़ाती है। सुजनता, शिष्टाचार इसी विनय धर्म

का बाह्य लक्षण है। जिसका हृदय दोषी है वह कभी अपना जीवन आदर्श, शिष्टाचारी नहीं बना सकता। जिन मनुष्यों ने अपने उद्योग से अपनी सच्चरित्रता के गुण से और विद्याविनय से ऊंचा पद प्राप्त किया है वे कितने ही हीन कुल के क्यों न हों, उनकी पद मर्यादा का ह्रास करना वा उन्हें हेय समझना शिष्टता के विरुद्ध है। विद्वानों का कथन है कि नम्रता ही स्वतन्त्रता का धातृ वा माता है। मनुष्य भ्रमवश अहंकार वृत्ति को उसकी माता समझ बैठते हैं। पर वह उस की सौतेली माता है जो उसका सत्यानाश करती है। चाहे वह सम्बन्ध ठीक हो या न हो, पर इस बातको सब मानते हैं कि आत्म संस्कार के लिये थोड़ी बहुत मानसिक स्वतन्त्रता परमावश्यक है। चाहे उस स्वतंत्रता में अभिमान और नम्रता दोनों का मेल हो, चाहे वह नम्रता ही से उत्पन्न हो। यह बात सबको निश्चित है कि जो मनुष्य मर्य्यादा पूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता है, उसके लिये वह गुण अनिवार्य है। जिस से आत्म निर्भरता आती है ये बातें आत्म मर्यादा के लिये आवश्यक हैं, यह सारा संसार जो कुछ हम हैं और जो कुछ हमारा घर है हमारा शरीर, हमारी आत्मा, हमारे कर्म, हमारे भोग, हमारे घर की और बाहर की दशा, हमार बहुत से अवगुण और थोड़े से गुण सब इसी बात की आवश्यकता प्रकट करते हैं कि हमें अपनी आत्मा को नम्र रखना चाहिये। मनुष्य का बेड़ा अपने ही हाथ में है। उसे चाहे वह जिधर लगावे। यहां एक कहानी इस प्रकार है:-

एक मनुष्य यह सुन कर दौड़ा कि इन्द्र धनुष पृथ्वी पर जिस स्थान से उठा है, वहां एक सोने का कटोरा है पर वह ज्यों ज्यों आगे बढ़ता गया, त्यों त्यों उसे इन्द्र धनुष भी आगे बढ़ता दिखाई दिया, और अन्त में आकाश में लीन होगया।

इसी प्रकार काल समुद्र में बुल बुले पर बुलबुले उठते हैं और उसी में अदृश्य होते हैं। पर कुछ वस्तुयें ऐसी भी हैं, जिनका नाश नहीं होता, जिन्हें काल नहीं स्पर्श करता, हमारा धार्मिक स्नेह, हमारा पारिवारिक सहृदयता, उदारता, और स्वार्थ त्याग- ये वस्तुयें ऐसी हैं जो एक ऐसे अमूल्य और अक्षय भंडार के रूप में संचित होती जाती हैं जो अंत में उस अनंत प्रेम स्वरूप परमेश्वर में लीन हो जायेंगी। हमारी प्रकृती में जो उत्कृष्टता है वह मृत्यु के उपरान्त भी बनी रहेगी। जिस प्रकार हमारी आत्मा अमर है, उसी प्रकार उसका अंश स्वरूप हृदय भी अमर है। जिस प्रकार हमारा बुद्धि में ज्ञान बना रहता है उसी प्रकार हमारे हृदय के भाव भी बने रहते हैं क्योंकि वे आत्मा के अंश हैं। एक विद्वान् का कथन है कि इस समस्त विश्व में एकही मंदिर है वह मनुष्य का शरीर है, इससे बढ़ कर और कोई पवित्र मंडप नहीं किसी महान् पुरुष को मस्तक नवाना अस्थि, मांसमय शरीर में व्यक्त होने वाले आत्मा रूप की आराधना करना है, एक और महात्मा की उक्ति है, क्या तू नहीं जानता कि तेरा शरीर उस आत्मा का पवित्र मंदिर है, जो परमात्मा का अंश है। कोई परमात्मा वा ज्ञानवान प्राणी जो शरीर की विलक्षण बनावट को समझता है, क्या वह उसे अपवित्रता की छूतसे बचावेगा? स्त्रियोंके लिये सतीत्व बड़ा भारी धर्म बतलाया जाता है, परन्तु पुरषों के चरित्र दोष का विचार करने में समाज बड़ी रियायत करता है, किन्तु आत्मा के मंगल के लिये, चित्त की सुव्यवस्था के लिये, आध्यात्मिक बल की रक्षा के लिये, अकाल

मृत्यु से बचने के लिये, पुरुषों को सच्चरित्रता अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु पुरुष मात्र भ्रम वश अपनेको स्वतंत्र निर्दोषी मान शास्त्र मर्यादा को उलंघन करने में तनिक भी संकोच नहीं करते, इस संसार में व्यभिचारियों की उनके दुष्कर्मों के कारण जो जो दुर्गतियां होतीं हैं, उनका यथावत् समझना तो कठिन होता है, पर यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिये कि पाप उनके शरीर को खाता चला जाता है उनकी शक्तियों को भीतर ही भीतर क्षीण करता चलाजाता है, यहां तक कि उनकी आत्मा जर्जर और कलुषित होकर अपनी सारी दैवी सम्पत्ति खो बैठती है। श्रुति और स्मृति दोनों व्यभिचारी पुरुष से पुकार २ कर कहती हैं कि याद रख तेरे पाप का भांडा एक दिन फूटेगा। यमदूत तेरे पीछे लगा है, उसका दंड तेरे ऊपर अवश्य उठेगा, चाहे जब उठे, यदि यम दूत के दंड से बचना चाहता है तो, कुकर्मों से मुख मोड़ कर अन्तःकरण को पवित्र बना, पवित्र अन्तःकरण में ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है, जो अन्तःकरण पवित्र है वह पापके लेश मात्रको भी अन्दर नहीं घुसने देता। वह उस सीपके समान स्वच्छ होता है, जो स्वाती की बूंद के अतिरिक्त और किसी बूंद को नहीं ग्रहण करती। आत्मानुभव का आनन्द व्यभिचार के कुत्सित आनन्द से कहीं बढ़ कर है, सांसारिक सुख क्षण भंगुर आत्म सुख अखंड है, सांसारिक सुख दुःखदायी है आत्मसुख सुखदायी है। सांसारिक सुख-विनाशी है, आत्म सुख अविनाशी है। ऐसे अखंड सुख की प्राप्ति के लिये पुरुषों को अपना जीवन निष्कलंक बनाना ही श्रुतिने धर्म कहा है पुरुषों में तो बहुत कम धर्मारूढ देखने में आते हैं परन्तु स्त्री जाती में कोई विरली ही ऐसी होगी जो अपना धर्म त्याग बैठी हो। जैसे कि स्त्री के लिये एक पतिव्रत का नियम है। उसी प्रकार एक पत्नीव्रत का नियम पुरुषों के लिये है। परन्तु स्त्री जाति आजन्म अपने धर्म का पालन करती हैं लेकिन पुरुषमात्र इससे वंचित हो रहते हैं। क्योंकि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में चाञ्चल्य अधिक होता है, उनका मन और इन्द्रियें अपने आधीन नहीं होतीं इसी कारण ऋषी मुनियों ने शास्त्र में पुरुषों के लिये बहु विवाह की मर्य्यादा उपस्थित की है, तब स्त्रियों के लिये एक ही विवाह का नियम क्यों? यही कारण है कि स्त्री जाति को स्वाभाविक ही ऐसी शक्ति मिली हुई है, कि जिस शक्ति के प्रभाव से हर अवस्था में नियम बद्ध रह सकती है यह तो सबके अनुभव सिद्ध ही है, और प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक गृह के अंदर एक छोटे भाई अथवा बड़े भाई की पत्नी विधवा होजाती है, तो अपने जेष्ठ तथा देवर की दूसरी, तीसरी चौथी शादी बड़े हर्ष के साथ कराती हैं, और आप धर्म पर आरूढ रहती हैं उसके मन में कभी स्वप्न में भी अपने प्रति बुरी भावनायें नहीं आती वह अपने एक पतिव्रत धर्म में नियुक्ता है, जब पति जीवित था तब पति सेवामें आनन्दित रहती थी, अब पति परलोक सिधार गये तो, अब जप, तप ईश्वर भक्ति आदिमें आनन्दित रहती हैं वह हर अवस्था के नियम का पालन करना ही अपना धर्म मानती है, स्वभाव से ही स्त्रियोंमें लज्जा, शंका, भय, सुशीलतादि गुण उपस्थित हैं इसी कारण वे अपनी कुल मर्यादा व शास्त्रका उलंघन नहीं कर सकती। वर्तमान समय में पुरुषों की भान्ति स्त्रियोंके लिये भी एक से अधिक अपनाविवाह करने की प्रथा जारी की जा रही है, परन्तु इस प्रणाली के अनुसार स्त्री जाति को

स्वधर्म नहीं छोड़ना अभिष्ट है, मनुष्य शास्त्राज्ञानुसार अपने कुल धर्म का स्वधर्मानुसार पालन करता हुआ सिद्धि तथा सुख को प्राप्त करता है ऐसे कल्याणकारी मार्ग को त्याग कर कौन बुद्धिमान् पाप पंक में अपने को डुबोयेगा और दूसरे विषय सुख क्षण में नष्ट होने वाले देख कर कौन इनके लिये लालायित होगा, इस लिये, हे प्यारी बहिनो! अपने स्वधर्म को न त्याग कर जिस समय जैसी भी प्रारब्ध वश अवस्था प्राप्त हो उसी को आनन्द से बर्तना श्रेष्ठ है, वेद में एक ही बार एक संस्कार की आज्ञा है यह तो सर्वको प्रत्यक्ष है कि गर्भाधानादि हरेक संस्कार एक ही बार किये जाते हैं फिर क्या कारण है कि विवाह संस्कार दो चार बार कर लिया जाय? यह विषय लोलुपता स्वार्थ के सिवाय और कुछ नहीं है, जब मनुष्य कामोन्ध होता है, तब शास्त्र मार्यादा को त्याग देता है, परन्तु शास्त्राज्ञा तोड़ना महान् पाप है, इस कारण जो प्राणी जैसा करेगा, वैसा भरेगा, यह कहावत प्रसिद्ध है, कि "कौवा चला हंस की चाल अपनी भी भूल गया" जब एक बार विवाहित पति न रहा, तो उस विधवा के लिये शास्त्र कहता है कि अब वह विधवा संन्यस्त रूप में आगयी, अर्थात् उस को आतुर्य संन्यास प्राप्त हुआ, और संन्यस्त जैसे आचार विचार से रहने में ही अब उसका कल्याण है, यदि इस संन्यास से विपरीत कर्म करेगी तो, वे विधवायें पाप की भागी होंगी, और फिर अनेकों जन्म जन्मान्तरों में नाना नरक यातनायें भोगनी पड़ेंगी। जिस संन्यास के लिये पुरुषों को अनेकों साधन करने पड़ते हैं, वही संन्यास स्त्रीको यदि भाग्य से प्राप्त हुआ है, तो फिर भला उसको त्याग कर क्यों अपने को नाना नरक यातनाओं में डाले, जिनका कि फिर अन्त नहीं है।

शंका:-संन्यास क्या?

समाधान:-किसी शृंगारिक वस्तु की इच्छा न करना, सुगन्धित पदार्थों को नहीं छूना, रंगीन वस्त्र नहीं पहना। अधिक वस्तुओं की इच्छा नहीं करना, किसी का बुरा नहीं चाहना, मन, वाणी, कर्म से किसी जीव को नहीं दुःखाना किसी से लेने की इच्छा नहीं करना, यथा प्राप्त में संतुष्ट रहना, अपने पराये का भाव छोड़ देना, सर्व को अपने आत्मा सम जानना, किसी से राग, द्वेष नहीं करना, सब के सुख, दुःख को अपने ही कर के मानना, अधिक वस्तुओं का संग्रह, नहीं करना, शरीर निर्वाह मात्र संचय करना, अति संग्रह से पराङ्मुख रहना, सर्ववासनायें त्यागकर ईश्वर भजन में दत्त चित्त होना यही संन्यासी के धर्म हैं। स्वधर्मानुसार यथा वत् धर्म का पालन करना यही आदर्श जीवन है। जिस का जीवन आदर्शमय है उस के लिये कोई कार्य असाध्य नहीं है क्योंकि धर्म कार्य तभी तक कठिन प्रतीत होते हैं जब तक कि विषयों की इच्छायें प्रबल हैं जहां विषयों की इच्छायें सूक्ष्म हुई कि स्वधर्म की इच्छायें आप ही प्रादुर्भूत हो जाती हैं। नीति शास्त्र का मत है:-

विद्या बिन होता नहीं, जीवन उच्च महान।
तासे विद्या सीख कर, करले तात्विक ज्ञान॥
करले तात्विक ज्ञान, ध्यान विषयों का तजरी।
कर जीवन आदर्श, प्रेम से हरि को भजरी॥
जगदेवी मत मूल, भूल की मूल अविद्या।
हो निर्भय निःशंक, प्रेम से पढ़ नित विद्या॥

सारांश यह है कि सबसे हिल मिल कर चलना

राग द्वेष न करना, मनसे, वाणी से, शरीर से किसी को पीड़ा न देना, यम नियम का पालन करना, शांत रहना, यथा प्राप्तमें संतुष्ट रहना, इसीका नाम आदर्श है, संत महात्माओं का यह आदेश है।

हिल मिल सब से चलिये, यह ही है आदर्श।
दुःख न काऊ दीजिये, होयन दुःख स्पर्श॥
होय न दुःख स्पर्श, सर्व का अंश विचारे।
मधुर सुधा रस सानि सत्यहित वाक्य उचारे॥
जय देवी भज शांति, त्यागदे भिन्ना किल किल।
देख सभी में ईश, चाल री सब से हिल मिल।

अश्रद्धालुओं का भगवद्गुण गान।

[ले० श्री० मधुमंगल जी मिश्र]

गोसाईं जी ने कहा है:-

अहि अघ अवगुण नहिं मनि गहई।
हरह गरल दुःख दारिद दहई॥

अर्थात् मणि सर्प के समीप रहके भी उसके दोष वा बुराइयों को ग्रहण नहीं करता, प्रत्युत सर्प के काटने पर विष को खींच लेता है। जब विष खींचने को नहीं होता, तब जहां रक्खा रहता है वहां के निवासियों के दुःख तथा दारिद्र्य का नाश करता है। इस से बढ़ कर और क्या सज्जन का गुणगान हो सकता है? हां होसकता है:-

कटे परशु मलय सुनु भाई, निज गुण देइ सुगन्ध बसाई

मलयागिरि चन्दन काटने वाली कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित कर देता है।

तुलसी सन्त सुअम्ब तरु फूलि फलहिं पर हेत।
इत तेंवे पाहन हनत उतते वे फल देत॥

जैसे भाव गोसाईं जी के हृदय में भरे थे वैसे ही उन ने अपने प्रभु को भी सराहा है:-

पुर जन परिजन गुरु पितु माता।
राम स्वभाव सबहिं सुख दाता॥
बैरिउ राम बड़ाई करहीं।
बोलनि मिलनि विनय मन हरहीं।

अपने सद्भाव से जैसे गोसांई जी ने दोष को छोड़ गुण ग्राहकता का वर्णन किया है वैसे ही प्रारब्ध जात नीचता का परित्याग कर गुण के वरदान में नीचता नहीं फटकने दी:-

लोक बेद सब भांतिहि नीचा।
जासु छांह छुइ लेइय सींचा॥
तेहि भरि अंक राम लघुभ्राता।
मिलत पुलक परिपूरित गाता।
राम राम कहि जे जमुहाहीं।
तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं॥
एहि तो राम लाइ उर लीन्हा।
कुल समेत जग पावन कीन्हा॥

करम नास जल सुरसरि परई।
तेहि को कहहु शीस नहिं धरई॥
उलटा नाम जपत जग जाना।
बालमीकि भे ब्रह्म समाना॥
श्वपच शबर खस यवन अहीर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात॥
नहिं अचरज जुग जुग चलि आई।
केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई॥

भगवान् केवल भक्तों पर ही कृपा करते हों यह बात नहीं है, वे अभक्तों को भी सद्गति देते हैं और विरोधी अभक्त भी उनका गुणगान करते हैं। यह सन्तों का गुण गोसांई जी के हृदय में बसा है अतः वह असज्जन पात्रों से भी प्रशंसा कराने में नहीं चूके हैं।

गोस्वामी जी ने भगवान के विरोधियों की निन्दा की है। उनका आचरण ही निन्द्य था। परन्तु निन्द्य पात्र के आचरण में भी कुछ रंगीन छींटें डाल दिये हैं। निरा काला ही नहीं रंगा है। प्रस्तुत लेख में वे रंगीन छींटें उद्धृत करके यह दिखाया जावेगा कि वे पात्र सर्वथा नीच ही न थे। गुणग्राही भी थे।

मारीच।

तेहि पुनि कहा सुनहु दशशीसा ते नर रूप चराचर ईशा
तासों तात वैर नहिं कीजे मारे मरिय जियाये जीजे
जो नर तदपि नाथ अति शूरा।
तिन्हहि विरोधि न पाइय पूरा॥
उभय भांति देख निज मरणा।
तब ताकेसि रघुनायक शरणा॥
उतरु देत मोहि हतिहि अभागे।
कस न मरौं रघुपति शर लागे॥
अस जिय जानि दशानन संगा।
चला राम पद प्रेम अभंगा॥
मन अति हरष जनाव न तेही।
आजु देखि हौं परम सनेही॥
नित परम प्रीतम देखि लोचन।
सुफल करि सुख पाइहौं॥
श्री सहित अनुज समेत कृपा निकेत पद मन लाइहौं।
निर्वाण दायक क्रोध हर हर भक्ति अवशिहिं बस करी
निज पाणि शर संधानि सो मोहिं बधिहिं सुख सागरहरी
मम पाछे हरि धावत धरे शरासन बान।
पुनि पुनि प्रभुहिं विलोकिहौं धन्य न मो सम आन॥

त्रिजटा

त्रिजटा नाम राक्षसी एका।
राम चरण रत निपुण विवेका॥
सबहिं बुलाइ सुनाएसि सपना।
सीतहिं सेइ करौ हित अपना॥
नगर फिरी रघुबीर दुहाई।
तब प्रभु सीतहिं बोलि पठाई।
कह त्रिजटा सुनु राज कुमारी।
उर शर लागत मरइ सुरारी॥
प्रभु तातें उर हतइ न तेही।
एहि के हृदय बसति बैदेही॥
काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तब ध्यान।
तब रावण कह हृदय महं मरिहहिं राम सुजान॥

खरदूषण त्रिशिरा।

प्रभु विलोकि शर सकहिं न डारी।
थकित भये रजनी चर भारी॥
सचिव बोलि बोले खरदूषण।
यह कोउ नृप बालक नर भूषण॥

नाग असुर सुर नर मुनि केते।
देखे जिते हते हम जेते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई।
देखी नहिं अस सुन्दरताई॥
यद्यपि भगनिहिं कीन्ह कुरूपा।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

सूर्पनखा।

अवध नृपति दशरथ के जाये।
पुरुषसिंह बन खेलन आये॥
जिन्ह कर भुजबल पाइ दशानन।
अभय भये विचरत मुनि कानन॥
देखत बालक काल समाना।
परम धीर धन्वी गुण नाना॥
अतुलित बल प्रताप दोउ भ्राता।
खल बधरत सुर मुनि सुखदाता॥
शोभाधाम राम अस नामा।
तिन्ह के संग इक नारि ललामा॥
रूपराशि बिधि नारि सँवारी।
रति शतकोटि तासु बलिहारी॥

शुक।

कहत राम यश लंका आये।
रावण चरण शीस तिन नाये॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा।
नाथ राम सन तजिय बिरोधा॥
अति कोमल रघुबीर सुभाऊ।
यद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा प्रभु तुम पर करिहैं।
कर अपराध न एकौ धरिहैं॥

कालनेमी।

देखत तुमहिं नगर जेइ जारा।
तासु पंथ को रोकन हारा॥
भजि रघुपति करु हित आपना।
छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना॥
नील कंज तनु सुंदर श्यामा।
हृदय राखु लोचन अभिरामा॥
अहंकार ममता मद त्यागू।
महामोह निशि सूतत जागू॥
काल व्याल कर भक्षक जोई।
सपनेहु समर कि जीतिय सोई॥

प्रहस्त।

बचन सबहिं के श्रवण करि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिय पितु, मंत्रिन्ह बुधि अति थोरि॥
कहहिं सचिव सब ठाकुर सोहाती।
नाथ न पूर आव इहि भाँति॥
जेहि जलनाथ बंधायेऊ हेला।
उतरेव सेन समेत सुबेला॥
सो मनु मनुज खाव हम भाई।
बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥
पिय बानी जे सुनहिं जे कहहिं।
ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥
बचन परमहित सुनत कठोरे।
सुनहिं जे कहहिं ते नर पितु थोरे॥
यह मत जौ मानहु पितु मोरा।
उभय प्रकार सुजसु जग तोरा॥

माल्यवान्।

माल्यवन्त इक सचिव सयाना।
तास बचन सुनि अति सुख माना॥

तात अनुज तव नीति विभूषण।
सो उर धरहु जो कहत विभीषण॥
वेद पुराण जासु गुन गावा।
राम विमुख सुख काहुन पावा॥
परिहरि वैर देहु वैदेही।
भजहु कृपानिधि परम सनेही॥

मेघनाद।

छाँडेउ प्राण मांझ उर लागा।
मरती बार कपट सब त्यागा॥
रामानुज कहँ राम कहँ अस कहि छँडेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अँगद हनुमान॥

कुम्भकरण।

भल न कीन्ह तैं निशिचर नाहा।
अब मोहिं आइ जगायेहि काहा॥
अजहुँ तात त्यागि अभिमाना।
भजहु राम होइहि कल्याना॥
हैं दशशीस मनुज रघुनायक।
जाके हनूमान से पायक॥
कीन्हेहु प्रभु विरोध तेहि देवक।
शिव विरंचि सुर जाके सेवक॥
अब भरि अंकु भेंटु मोहिं भाई।
लोचन सुफल करौं मैं जाई॥
श्यामगात सरसीरुह लोचन।
देखउँ जाइ ताप त्रय मोचन॥

रावण।

खर दूषण मो सम बलवन्ता।
तिन्हैं को मारै बिनु भगवन्ता॥
सुर रंजन भंजन महिभारा।
जो भगवन्त लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैर हठ करिहौं।
प्रभु शरतें भवसागर तरिहौं॥
होइहि भजन न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥

मन्दोदरी।

तुम्हहि रघुपतिहिं अंतर कैसा।
खल खद्योत दिनकरहिं जैसा॥
तासु विरोध न कीजिय नाथा।
काल करम जिव जाके हाथा॥
नाथ दीन दयाल रघुराई।
बाघउ सनमुख गये न खाई॥
तासु भजन कीजिय सुनु भर्ता।
जो कर्ता पालक संहर्ता॥
सोई रघुबीर प्रणत अनुरागी।
भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥
सोई कोशलाधीश रघुराया।
आयऊ करन तोहि पर दाया॥

कबन्ध।

दुर्वासा मोहिं दीन्ही शापा।
प्रभु पद देखि मिटा सब पापा॥
रघुपति चरण कमल शिर नाई।
गयउ गगन आपनिगति पाई॥

बाली।

परा विकल महि शर के लागे।
पुनि उठि बैठ देख प्रभु आगे॥
श्याम गात शिर जटा बनाये।
अरुण नयन शर चाप चढ़ाये॥
पुनि पुनि चितइ चरण चित दीन्हा।
सफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥

हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा।
बोला चितइ राम की ओरा॥

सुनहु राम स्वामी सकल चलन चातुरी मोरी।
प्रभु अजहूं मैं पातकी अंतकाल गति तोरी॥

विभीषण।

तात कबहुं मोहि जानि अनाथा।
करि हहिं कृपा भानुकुल नाथा॥
अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता।
बिनु हरि कृपा मिलहि नहिं सन्ता॥
गो-द्विज-धेनु-देव-हितकारी।
कृपा सिंधु मानुष तनुधारी॥
देहु नाथ प्रभु कहँ बैदेही।
भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥
शरण गये प्रभु काहु न त्यागा।
विश्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा॥

जिन्ह पादन्ह के पादुकहि भरत रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिहौं इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

बालि और विभीषण को भगद्विरोधियों में गिनना ठीक न होने पर भी हृदय ग्राही पंक्तियों के उठाने के लालच से ये पंक्तियां स्थान संकीर्णता के भय से काट छांट के उठाई हैं। भावकीर्तन ऐसा सुखदायक है कि दुर्जन भी भगवत् की प्रशंसा ही करते हैं। भगवत् दर्शन के भावी सुख का उल्लेख मारीच ने और विभीषण ने किया है। इसे पढ़ मुझे भागवत् के दशम स्कन्ध ३९ अध्याय में अक्रूर का वर्णन स्मरण हो आता है। महात्मा गण उसे पढ़ें।

दो अक्षर

[ले० श्री० दुर्गाप्रसाद जी गुप्ता]

गोसाँ तुलसी दास जी कह रहे हैं :-

राम, बिहाय मरा जपते बिगरी सुधरी कवि, कोकिल हूकी।
नाम हिते गज की गणिका हु, अजामिल की चलगै चल चूकी॥
नाम प्रताप बढ़े कुसमाज बजाय रही पति पाण्डु बधू की।
ताको भलो अजहूँ तुलसी जेहि प्रिति प्रतीत है "आखरद्" की॥

राम को छोड़, मरा जपने से ही कवि कोकिल बाल्मीकि जी की बिगड़ी हुई दशासुधर गई सुधर क्यों नहीं जावे? यहाँ राम और मरा से कुछ तात्पर्य नहीं हैं काम है दो अक्षरों से, वह अक्षर हैं रकार और मकार, उल्टे हो चाहे सीधे, उनका प्रभाव वही रहेगा, खाण्ड की रोटी है जो उल्टी सीधी सब ओर से मीठी है यह भी तो कहा है।

तुलसी अपने राम को रीझ भजो कै खीज।
उलट परे ते जमत हैं उल्टे सीधे बीज॥

नाम के प्रताप से ही गज गणिका अजामिल और पाण्डु बधु द्रौपदी की लाज रह गई।

"ताको भलो अजहु तुलसी जेहि प्रीति प्रतीति आखर दूकी"

जिसको दो अक्षरों से प्रीति है उनपर पूरा विश्वास है उस के लिए आजभी वही बात है।

जिस के हृदय में इन "दो अक्षरों" का राज्य हो गया, वह भूल गया संसार की सारी बातें, खुलगई उस के हृदय की आँखें और हो बैठा वह दुनिया भर का बादशाह, देखिये! दो अक्षरों के प्रेमी संसार

सुख साधन पदर्थों को किसकार धिक्कार रहे हैं। इन दो रत्नों के सामने राज, साज को कितनी फटकार बतायी है असार संसार को कैसा लताड़ा है।

राज वृथा गज बाजि वृथा वनिता सो वृथा सब साज वृथा ते। सर्व वृथा गुण सर्व वृथा, अस द्रव्य वृथा गये ज्ञान दया ते॥ वार वृथा परिवार वृथा संसार वृथा गुरु नेम क्रिया ते एक रकार "मकार" बिना धिक्कार सभी चतुराई कि बातें॥

रकार और मकार में ही वह जादू है वह शक्ति है कि राजाओं से पाव पुजवा देता है।

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय।
ते तुलसी तव राम बिन, तेअब राम सहाय॥

कहां तो घर घर में टूक (रोटी के टुकड़े मांगना) और कहां भूपति (राजाओं) द्वारा पूजे जाना, है ना अचम्भे की बात! यह है दो अक्षरों की करामात, तभी तो गुसाईं जी ने अपनी अधीनताई, अपनी गरीबी, को देखते हुए भी छाती ठोक कर कह दिया है:-

"हौं तो सदा खर को असवार तुम्हारे ही नाम गयन्द चढ़ायो"

न तत्पुराणं नहि यत्र रामो, यस्यां न रामो न च संहिता सा।
स नेतिहासो नहि यत्र राम, काव्यं न तत्स्या न्नहि यत्र रामः॥

जहां राम का नाम नहीं अर्थात् जिस ग्रन्थ में रामका नाम नहीं है चाहे वह पुराण हो, संहिता हो, इतिहास हो, अथवा काव्य हो उसकी गणना न पुराणों में है न संहिताओं में, न इतिहासों में और न काव्यों में।

खूब रही! जिस में राम शब्द नहीं वह ग्रन्थ ही नहीं, किसी औषधालय के सूची पत्र में रामबाण चूर्ण आदिके बहाने राम शब्द आने से उसका आदर हो सकता है परन्तु राम नाम रहित काव्य, पुराण, इतिहास कौड़ी कामके नहीं। इन दो अक्षरों के बिना पुस्तक भंडार कोरा कागजों का कूड़ा है, राग बेसुरा है, मोती बेआब है।

सप्तकोटि महामंत्राश्चित्त विभ्रम कारका।
एक एव परो मंत्रो राम इत्यक्षर द्वयम्॥

करोड़ों महामंत्र चित्त में भ्रम करने वाले हैं केवल राम यह दो अक्षर ही सब से उत्तम परम मंत्र है।

भला चित्त में भ्रम करने वाले करोड़ो महामंत्रों को कौन समझदार मनुष्य जपेगा जबकि सारे मंत्रो का तत्व राम नाम परम मंत्र उपस्थित है।

अहं जपामि देवेशि रामनामाक्षर द्वयम्।
श्री रामस्य स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदिस्थले॥

हे पार्वति! मैं सदैव राम नाम के दो अक्षरों को ही श्रीराम जी का स्वरूप हृदय में धारण करके जपा करता हूं।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनो रमे।
सहस्र नाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने॥

देखिये किस प्रकार महादेव जी राम नाम महा मंत्र को सहस्र नाम के बराबर बताकर जपने का उपदेश कररहे हैं। क्या अबभी कुछ संदेह की गुंजइश है?

तुलसी जनि सुनि समझिये कृपा सिन्धु रघुराज।
महंगे मणि कंचन किये, सोधो जग जल नाज॥

कितना उपदेश पूर्ण दोहा है, क्या मर्म कि बात कही है, संसार में मनुष्य के लिये जिस वस्तुकी जितनी अधिक आवश्यकता है वह वस्तु उतनी ही सुलभ और सस्ती है, मणि कंचन की इतनी आवश्यकता नहीं जितनी अन्न और जल की है, परन्तु हायरी मनुष्य जाति!! तू तो सस्ती चीज का सदुपयोग करना ही नहीं सीखी!

भजन

मैया मोहि बड़ो कर लैरी ॥ टेक ॥
दूध दही घृत माखन मेवा, जब मांगों तब दैरी ॥१॥
जो कुछ होंस हो जननी मेरी, जोहि मोहि रुचैरी ॥२
हौंहु सभल सबहिन में जैसे, सदा रहूं निर्भयरी ॥३॥
सूर केश गह कंस पछारौं, करि हौं मथुरा जयरी ॥४॥

२

तूमेरी पिता तुही मेरी माता, तू मेरो जीव प्राण सुख दाता
तुम मेरे ठाकुर हौं दास तेरो,
तुमबिन अवर नहीं कोई मेरो ॥२॥
कर कृपा करो प्रभुदात, तुमरी अस्तुति करौं दिन रात
हम तेरे जंत्र तू बजावन हारा,
हम तेरे भिखारी तू दातारा ॥३॥
तव प्रसाद रंग रस माने, घट २ अन्तर आप समाने
तुमरी कृपाते जपिए नाऊं, साधु संग तुमरे गुण गाऊं
तुमरी कृपा ते होय दर्द विनाशा,
तुमरी माया ते कमल विकाशा ॥ ६ ॥
हौं बलिहार जाऊं गुरु देवा,
सफल दर्श जाकि निर्मल सेवा ॥७॥
दयाकरो ठाकुर प्रभु मेरे, गुण गावे नानक नित तेरे

३

दो-सब देवन को आत्मा अपना है द्विज रूप
निरंजन दुःख भंजनं ररंकार ज्योति स्वरूप
प्रथम मैं आतम देव मनाऊं ।टेक॥
सब देवाएं अन्त जासुके सर्व रूप सब ठाऊं
आत्म गणेश शक्ति अरु सूरज हरि हर निज गुरु पाऊं
यह सब कुछ हूं मैं कहे आत्मा यही श्रुति में पाऊं

४

दर्शन करिवे नंदनंदन के शिवने अलख जगायो है
तज कैलास नंदकी ड्योढी आयो है,।
खोल पलक अब देख झलक यह शब्द सुनायो है॥
अंग विभुति गले मृगछाला नाद बजायो है।
शीश विराजे गंग भुजंगी गल लिपटायो है॥
कर डमरु त्रिशूल जोगिया भेष बनायो है।
भये प्रेम के वश त्रिपुरारि हरि गुण गायो है॥
दासी शंकर की लीला लिख हिय हर्षायो है।
धन्य जशोदा तेरे तन को लाला जायो है॥

५

सुनियो संत सुजान गर्व मत करियो रे ॥ टेक ॥
चार दिना की चहर बनी है, आखिर तुझको मरना रे
तू जाने मेरी ऐसी तिसैगी, पल २ लेखा भरना रे
दास गरीब सकल में साहिब, नहीं किसी से अड़ना रे
खाले पीले बिलसले हंसा, जोड़ २ नहीं धरना रे

६

बाल्मीक तुलसी जी कहगये ऐसो कलियुग आवेगा
ब्राह्मण हो के वेद न जाने वृथा जन्म गवावेगा
बिना खड्ग के क्षत्री उठि है शूद्रराज चल वेगा
बेटा मातपिता नहीं चीन्हें तिरिया से नेह लगावेगा
जो तिरिया स्वामी को जाने पराय पुरुष लौ लावेगा
सती यती बिरले होवेंगे सब दुखिया हो जावेगा
कहत कबीर सुनो भाई साधो राम नाम नहीं भावेगा

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		२९५
२. शरणागत भक्त रघुनाथ		२९६
३. भगवद्भक्ति [श्री पूज्य भोले बाबा जी		३००
४. हे मन ! (कविता) [ले० श्री रमाशंकर जी मिश्र "शंपति"		३०४
५. भक्तिही सर्वोपरि है [ले० श्रीस्वामी आत्मानन्दजी		३०४
६. महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश [ले० भक्त रत्न श्री मथुराप्रसाद जी		३०७
७. करुण पुकार (कविता) [ले० श्रीप्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी		३१०
८. भक्ति, भक्त और भगवान् [ले० श्री० [ले० श्री हीरालाल जी		३१०
९. नेत्र [ले० श्री मदनगोपाल "सिंहल"		३१२
१०. आदर्श जीवन [ले० बहन श्री जयदेवी		३१३
११. अश्रद्धालुओं का भगवद्गुणगान [ले० श्री० मधुमंगल जी "मिश्र"		३२०
१२. दो अक्षर [ले० श्री दुर्गाप्रसाद गुप्ता		३२४
१३. भजन		३२६

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।)
३.	वेदोपनिषत्	,,	।)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	।)
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	।।।)
६.	ज्ञान भक्ति योग संग्रह	,,	=)॥
७.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	।)
८.	सत्य शब्द संग्रह	,,	।=)
९.	शब्दसंग्रह	,,	।॥)
१०.	सारसंग्रह	,,	=)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	॥)
१२.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१३.	भगवदंक	,,	॥।)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।